2. *मैं कैसे जानूं कि संसार का यही तरीका है?*
संसार में जितने अधिक प्रतिबंध होते हैं,
लोग भी उतने अधिक गरीब होते हैं।
जितनी अधिक मात्रा में तेज अस्त्र-शस्त्र होते हैं,
घर और राष्ट्र उतनी अधिक मात्रा में बर्बाद होते हैं।
लोग जितने अधिक कला-कौशल संपन्न होते हैं,
उतने अधिक अशुभ लक्षण उभरते हैं।
कानून और व्यवस्था का जितना अधिक निर्माण होता है,
उतनी अधिक मात्रा में चोर और लुटेरे पनपते हैं।

3. *अतएव संत कहते हैं,*
यदि हम कुछ न करें, लोग स्वतः सुधर जायेंगे।
यदि हम शांति में प्रेम रखें, लोग स्वतः पुण्यवान होंगे।
यदि हम उत्तरदायित्व न लें, लोग स्वतः समृद्ध होंगे।
यदि हम कोई कामना न रखें, लोग स्वतः निष्कपट होंगे।

भावार्थ—1. राष्ट्र पर शासन करने के लिए शासन का गुण चाहिए। अस्त्र-शस्त्रों को चलाने की प्रवीणता के लिए योग्यता चाहिए। परंतु संसार को जीतने के लिए प्रापंचिक प्रवृत्तियों से सर्वथा मुक्त होना चाहिए।

2. मैं कैसे जानूं कि संसार का यही तरीका है? राष्ट्र में जितना अधिक प्रतिबंध होता है उतना अधिक लोग निर्धन होते हैं। अस्त्र-शस्त्र जितने अधिक तेज होते हैं, घर और देश उतना अधिक नष्ट होते हैं। लोग जितना ज्यादा कला-कौशल में निपुण होते हैं, उनमें उतने ज्यादा कुलक्षण एवं दोष पैदा होते हैं। जितने कानून बनते हैं और जितनी अधिक व्यवस्था दी जाती है, उतना ही ज्यादा चोर और लुटेरे पैदा होते हैं।

3. इसलिए संत कहते हैं, यदि हम कोई अनुशासन न करें तो लोग अपने आप सुधर जायेंगे। यदि हम शांति का अनुसरण करते हैं तो आस-पास के लोग स्वयं पुण्यकर्म में रत होंगे। यदि हम कोई जिम्मेदारी न लें तो लोग स्वयं संपन्न हो जायेंगे। यदि हम सारी इच्छाओं को छोड़ दें तो अन्य लोग अपने आप सरल हो जायेंगे।

भाष्य—राज्य का शासन करने के लिए शासन की कला चाहिए। देश, प्रदेश तथा क्षेत्र का शासन करने की जिसे जिम्मेदारी मिले, उसे शासन की कला सीखना चाहिए। उसके लिए शास्त्र हैं, अध्यापक हैं, बड़े-बड़े विद्यालय हैं। आजकल तो चुनाव का समय है। ऐसे नेता चुनकर विधानसभा और लोकसभा में जाते हैं जो मंत्री भी हो जाते हैं, वे जिस विभाग के मंत्री होते हैं उसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं है। शासक को शासन की कला सीखना चाहिए।

अस्त्र-शस्त्रों में निपुणता के लिए विशेष योग्यता चाहिए। सभी प्रकार के लोग अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग नहीं कर सकते। सभी प्रकार के लोग उनकी शिक्षा देने पर भी उसमें निपुण नहीं हो सकते। इसके लिए जिन मनुष्यों में विशेष योग्यता है, वे ही प्रशिक्षित होने पर अस्त्र-शस्त्र चला सकते हैं।

अब संत लाओत्ज़े अपनी मुख्य बात कहते हैं, **किंतु संसार को जीतने के लिए प्रपंच-प्रवृत्ति से पूर्णतः मुक्त होना अनिवार्य है।** संसार को जीतने का अर्थ है मन को पूर्ण जीत लेना। इसके लिए सांसारिक प्रवृत्तियों को कम करते जाना आवश्यक है। सारी इच्छाओं का त्याग कर देना जगत को जीत लेना है।

याद रखें, केवल कुछ न करने से कोई इच्छाओं का त्यागी नहीं हो सकता। केवल बाहर से हाथ-पैर बटोर लेने से काम नहीं बनता, अपितु व्यवहार का संयम चाहिए। सतत सेवा, स्वाध्याय, साधना, ध्यान आदि में लगे रहने से विवेक प्रखर होता है और प्रखर विवेक से प्रखर वैराग्य होता है। प्रखर वैराग्य में सारी इच्छाएं समाप्त हो जाती हैं। इच्छाएं समाप्त हो गयीं, यही संसार को जीतना है। ऐसे व्यक्ति का व्यवहार स्वाभाविक संयमित होता है।

मैं कैसे जानूं कि संसार का यही तरीका है? संसार में जितने अधिक प्रतिबंध होते हैं, लोग भी उतने अधिक गरीब होते हैं। संसार के व्यवहार को देखकर उसकी गतिविधि का ज्ञान होता है। सरकार का जितना अधिक प्रतिबंध होगा, जनता उतना अधिक उपार्जन करने से रुकेगी। यदि सरकार की तरफ से जनता को सरलता से सुविधाएं दी जायें, तो वह मेहनत करके अधिक संपन्न हो सकती है।

जितनी अधिक मात्रा में अस्त्र-शस्त्र होते हैं, घर और राष्ट्र उतनी अधिक मात्रा में बरबाद होते हैं। अस्त्र-शस्त्र जब अधिक बनाये जायेंगे तब उनका उपयोग करने का मन होगा। आजकल आतंकवादी उन्हीं का उपयोग कर निरपराध लोगों की हत्या करते हैं। ग्रंथकार का काल आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व का है। तब के अस्त्र-शस्त्र बहुत साधारण थे। आज अणुबम और एटमबम का समय है। कहते हैं कि आजकल जितने बम बनाकर रखे गये हैं, उनसे कई बार पूरी पृथ्वी को निर्जीव किया जा सकता है। आज तो मनुष्य मानो आग के गोला पर बैठा है। अतएव अस्त्र-शस्त्र सदैव मनुष्यों तथा प्राणियों के लिए अहितकर हैं।

लोग जितने अधिक कला-कौशल संपन्न होते हैं, उतने अधिक अशुभ लक्षण उभरते हैं। कला-कौशल जीवन-निर्वाह की वस्तुओं के उत्पादन में सहायक हैं, परंतु अधिक भौतिक उन्नति से जिस तरह मनुष्य विलासी, मानस रोगी तथा शारीरिक रोगी भी होता है वह आज अधिक समझा जा सकता है। चोरी, हत्या, व्यभिचार तथा नाना प्रकार के दुराचार का प्रचार कला-कौशल का

साइड-इफेक्ट है। आजकल फिल्म से अनेक प्रकार के दुराचार सीखे जा रहे हैं।

कानून और व्यवस्था का जितना अधिक निर्माण होता है, उतनी अधिक मात्रा में चोर और लुटेरे पनपते हैं। कानून पर कानून बनते हैं और उनमें इतनी बारीकियां होती हैं कि उनकी बाल की खाल काढ़कर सच का झूठ और झूठ का सच सिद्ध करने के लिए वकील बैठे हैं। चोर-लुटेरे और सभ्य लुटेरे कानून की रेंच-पेंच से ही छूटते रहते हैं। इस प्रकार उनका मन चोरी और लूट करने में बढ़ता रहता है।

अतएव संत कहते हैं, यदि हम कुछ न करें, लोग स्वतः सुधर जायेंगे। यह बड़ी ऊंची बात है। संत न किसी पर मुकदमा चलाते हैं और न दंड देते हैं, अपितु उनकी संगत में आकर लोग स्वत: सुधरते जाते हैं। बड़े-बड़े चोर, डाकू तथा हत्यारे भी सत्संग पाकर सुधर जाते हैं। ऊपर की बातें ठीक होने पर भी देश के लिए शासन और न्याय की आवश्यकता है, परंतु वे सरल हों और सरलता से शीघ्र उनका उपयोग हो।

यदि हम शांति में प्रेम रखें, लोग स्वतः पुण्यवान होंगे। इच्छा त्यागना, विवाद न करना, दूसरे की उलटी-पलटी सह लेना, स्वयं किसी को बुरा न कहना, वाक्य संयम रखना, यह सब शांति के लक्षण हैं। यदि हम इसी रहनी में जीवन व्यतीत करें, तो आस-पास के अन्य लोग जो समझ सकेंगे वे स्वयं सत्कर्म में लगेंगे। दूसरों को सुधारने के लिए अधिक प्रवचन की आवश्यकता नहीं है, अपितु पवित्र रहनी में रहने की आवश्यकता है। आप अपने को सुधारो, अन्य लोग जिन्हें सुधरना होगा स्वयं सुधरेंगे।

यदि हम उत्तरदायित्व न लें, लोग स्वतः समृद्ध होंगे। हम समझते हैं कि हमारे कारण जगत चल रहा है। यह बहुत बड़ा व्यामोह है। घर के वृद्ध, मठों के गुरु तथा अन्य क्षेत्रों के प्रबंधक यह मान लेते हैं कि हमारे बिना आगे सब डूब जायेगा। वे इस व्यामोह को छोड़ दें। जीवन में रुकने का समय समझो। करते-करते मर जाना अच्छा नहीं है। न करने की स्थिति में जाओ। जो अनुगामी हैं, उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक करने का अवसर दो। आखिर आप कब तक दायित्व लेंगे? बलात सब छोड़ देना पड़ेगा। इसलिए पहले ही अनुगामियों को आगे आने का अवसर दो। वे स्वयं अपना काम करेंगे और भूल-चूक करते हुए अपने को सम्हालेंगे और धीरे-धीरे वे अपने क्षेत्र में समृद्ध हो जायेंगे। दायित्व देने से अनुगामियों में उनकी योग्यताओं का विकास होता है।

भारत 1947 ई० में स्वतंत्र हुआ, तब सरकार ने देश की सारी सेवाओं को अपने हाथों में लिया, सारा दायित्व स्वत: ले लिया। अब पचास वर्षों बाद स्थिति संभली, सूझ बढ़ी, तो वह अपना दायित्व कम करती जा रही है। बस,

हवाई जहाज, चिकित्सा, शिक्षा, बिजली, संचार, खनन आदि की सेवाएं जनता के ऊपर छोड़ रही है। जनता में जो इन सेवाओं के योग्य हैं, वे इन्हें लेकर सरकार की अपेक्षा अच्छे ढंग से सेवा कर रहे हैं। कंपनियां सरकार को टैक्स देती हैं और सरकार कंपनियों पर अनुशासन रखती है। सरकारीकरण का महा पक्षधर कम्युनिज़्म है। आज उसका एकमात्र देश चीन भी देश-विदेश की कंपनियों को अपने देश में कारखाने तथा उद्योग-धंधे स्थापित करने के लिए सरलता से सुविधा दे रहा है। दायित्व छोड़ने से अपना बोझ हलका होता है और अनुगामियों तथा अन्य लोगों का विकास होता है। अतएव संत लाओत्ज़े का यह वचन परम सत्य है—**हम दायित्व न लें, लोग स्वतः समृद्ध होंगे।**

यदि हम कोई कामना न रखें, लोग स्वतः निष्कपट होंगे। कामना-शून्यता जीवन की परम ऊंचाई है। कामना-शून्य व्यक्ति ही पूर्ण दुखमुक्त होता है। जब हम सारी कामनाओं से रहित होते हैं, तब आस-पास के लोग जो सत्पात्र हैं वे निष्कपट व्यवहार करते हैं। दूसरे लोगों को, आस-पास के लोगों को हम सरल, सीधा, सच्चा, ईमानदार, निष्कपट एवं साधुवृत्ति के रूप में देखना चाहते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों का व्यवहार ही मधुर होगा। परंतु इसके पहले हमारा कर्तव्य है कि हम सारी कामनाओं से पूर्ण मुक्त रहें। सारी कामनाओं को छोड़ देने पर अपना अहित नहीं होगा, अपितु अपना तो पूरा कल्याण होगा ही, अन्य का भी हित होगा। केवल उपदेशबाजी से काम चलनेवाला नहीं है। सभी उपदेशों का सार है स्वयं निष्काम होकर जीना। यह स्थिति आ जाने पर आस-पास के समझदार लोग स्वत: निष्कपट, सरल और सीधे हो जायेंगे।

---

58. सरल और पवित्र जीवन दूसरों के लिए प्रेरक आदर्श है

1. *The ruler whose government is calm and unobtrusive,*
   his people are upright and honest.
   The ruler whose government is sharp-witted and strict,
   his people are underhand and unreliable.

2. *Happiness rests on unhappiness;*
   unhappiness lies in wait for happiness.
   But who is aware that the highest good is
   not to have orders issued?
   For otherwise order turns into oddities,
   and good turns into superstition,
   and the days of the people's delusion
   are truly prolonged.

3. *Thus also is the Man of Calling:*
   he sets an example without cutting others down to size;
   he is conscientious without being hurtful;
   he is genuine without being arbitrary;
   he is bright without being blinding.

अनुवाद

1. *वह शासक जिसका शासन संयत और विघ्न-रहित है,*
   उसके लोग सीधे और ईमानदार होते हैं।
   वह शासक जिसका शासन छुरधार और कठोर है,
   उसके लोग कपट रखने वाले और अविश्वसनीय होते हैं।

2. *सुख दुख की ओट में छिपा है,*
   दुख सुख की प्रतीक्षा में है।
   किंतु कौन इस बात से सचेत है,

कि आदेश जारी न करना ही सबसे उत्तम है!
चूंकि आदेश ही प्रकारांतर से समस्या बन जाते हैं,
शुभ ही अंधविश्वास का रूप ले लेता है,
और लोगों के दुख के दिन सचमुच लंबे हो जाते हैं।

3. *संतों की रहनी इस प्रकार होती है,*
वे आदर्श बनते हैं, बिना दूसरों का अवमूल्यन किये।
वे कर्तव्यनिष्ठ होते हैं, बिना दूसरों को हानि पहुंचाये।
वे प्रामाणिक होते हैं, बिना मनमानी किये।
वे ज्योतित होते हैं, बिना दूसरों को चौंधियाये।

भावार्थ—1. जिस शासक का शासन संतुलित और निर्विघ्न है, उसके लोग सरल और सच्चे होते हैं; किंतु जिस शासक का शासन तेज और कठोर है, उसके लोग कपटी और अविश्वसनीय होते हैं।

2. सुख दुख के पीछे छिपा है और दुख सुख की राह देखता है। कौन इस तथ्य से सावधान है कि आज्ञा न देना सर्वोत्तम है, क्योंकि यही रूप बदलकर समस्या बन सकता है। शुभ ही अंधविश्वास के रूप में बदल जाता है, फिर जनता के भटकाव और दुख का समय लंबा हो जाता है।

3. संतों के आचरण इस प्रकार होते हैं, वे दूसरों की कीमत घटाये बिना अपने उत्तम चरित्र का आदर्श स्थापित करते हैं। वे दूसरों की हानि नहीं करते, अपितु अपने कर्तव्य-कर्म करने में निष्ठावान होते हैं। वे मनमानी नहीं करते, अपितु अपने उत्तम व्यवहार के नाते प्रामाणिक होते हैं। वे दूसरों को अपनी चमक-दमक नहीं दिखाते, किंतु भीतर से ज्ञान-प्रकाश से प्रकाशित होते हैं।

भाष्य—वह शासक जिसका शासन संयत और विघ्नरहित है, उसके लोग सीधे और ईमानदार होते हैं। चाहे राष्ट्र का शासक हो, चाहे पार्टी, कंपनी, समाज या परिवार का शासक हो, यदि उसके शासन में संयम है, संतुलन है, शांति है और उसमें अड़चन खड़ी करने वाले बोझिल आदेश नहीं हैं, तो उसके लोग प्राय: सरल, निष्कपट और सच्चे होते हैं। जैसा राजा वैसी प्रजा कहावत है। शासक की ईमानदारी, सरलता और संयम का प्रभाव प्रजा एवं अनुगामियों पर पड़ता है।

वह शासक जिसका शासन छुरधार और कठोर है, उसके लोग कपट रखनेवाले और अविश्वसनीय होते हैं। राष्ट्र, पार्टी, कंपनी, समाज या परिवार के जिस शासक का शासन छूरे की धार की तरह तेज और कठोर होता है, उसके लोग कपट भरे हो जाते हैं। उन पर विश्वास करना मुश्किल हो जाता है। शासक में जब समता, शील, त्याग तथा लोक-कल्याण की भावना होती है, तब

उनके अनुगामी भी उन गुणों से वैसा आचरण की सीख पाते हैं। जहां शासन में कठोरता और क्रूरता है वहां शासक भी दुखी रहेंगे और प्रजा तथा अनुगामी भी।

सुख दुख की ओट में छिपा है, दुख सुख की प्रतीक्षा में है। जब दुख समाप्त होता है, तब सुख लगता है। जब दुख आता है तब मनुष्य सुख की प्रतीक्षा करता है। वस्तुतः अनुकूल माने गये प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों का मिलना सुख लगता है और प्रतिकूल माने गये प्राणी, पदार्थ तथा परिस्थितियों का मिलना दुख लगता है। आदती क्रियाओं का करना सुख लगता है और जब वे करने को नहीं मिलतीं तब दुख लगता है। यह सब सुख-दुख मन का झगड़ा है। रोग या किसी कारण से शारीरिक पीड़ा होती है, तो यह दुख स्वाभाविक है। विवेकवान उसे धैर्य से सहन कर लेता है, इससे उसको शारीरिक दुख भी कम लगता है।

सुख नाम की वस्तु कहीं है ही नहीं। हमारे मन की मान्यता में सुख की कल्पना है और यह सुख की कल्पना ही दुख बनाती है। जो सुख पाने की इच्छा छोड़ देता है वह दुखों से मुक्त हो जाता है। सारा माना हुआ सांसारिक सुख विषय मात्र है, और उसके पीछे दुख आना अनिवार्य है। जो माने गये सारे सांसारिक सुख की इच्छा छोड़ देता है वह दुखों से सर्वथा मुक्त हो जाता है।

किंतु कौन इस बात से सचेत है, कि आदेश जारी न करना ही सबसे उत्तम है। चूंकि आदेश ही प्रकारांतर से समस्या बन जाते हैं। राष्ट्र, पार्टी, कंपनी, समाज तथा परिवार में आदेश, आर्डर, कानून, विधान लागू करना पड़ता है। परंतु ग्रंथकार का भाव है कि इसके लिए बहुत भावुक न बन जाना चाहिए। शासक स्वयं संयमित हों तो उनके लोग स्वतः संयमित होंगे, यह साधुशाही बात है। कभी-कभी कोई आदेश ही समस्या बन जाते हैं, इसलिए ऐसे आदेशों का पुनः शोधन करना या उसे निरस्त करना होता है।

संत लाओत्ज़े अंतर्मुख संत हैं। उनके कई विचार लोगों को खटकते हैं। राष्ट्र और समाज में व्यवस्था के लिए विधान और आदेश जारी करना पड़ता है। उसमें हित होता है और त्रुटियां भी होती हैं। यह सबसे अच्छा है कि बिना विशेष विधान तथा आदेश जारी किये लोग स्वयं विवेक से सुधरें।

शुभ ही अंधविश्वास का रूप ले लेता है, और लोगों के दुख के दिन सचमुच लंबे हो जाते है। व्यक्ति-ईश्वर की कल्पना कर उसको प्रसन्न करके पाप से छूटने और सब कुछ पाने की इच्छा, देव तथा ईश्वर-पूजन के नाम पर निरपराध प्राणियों की हत्या, अवतारवाद, पैगंबरवाद, चमत्कार, देवी-देवता, भूत-प्रेत, मंत्र, तंत्र, यंत्र, फलित ज्योतिषजाल, देव को खुश करने के लिए घी, मेवे, अन्नादि का आग में फूंकना आदि सब शुभ के नाम पर ही घोर अंधविश्वास है। ऊंची-नीची जाति तथा वर्ण भी शुभ के नाम पर अंधविश्वास

है। ये सारे अंधविश्वास मनुष्य के दुख को बढ़ाते हैं। ये शुभ के नाम पर अशुभ हैं।

संतों की रहनी इस प्रकार होती है, वे आदर्श बनते हैं बिना दूसरों का अवमूल्यन किये। संत दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं ऊपर उठने का विचार नहीं रखते। क्योंकि यह साधुता के, सत्य के, ताओ के विरुद्ध है। अपने मन, वाणी और इंद्रियों के एक-एक पवित्र आचरण से मनुष्य महान बनता है। जो व्यक्ति अपने आप पर पूर्ण संयम कर लेता है, वह स्वयं तो सुखी रहता ही है, दूसरों के लिए भी उत्तम आदर्श होता है।

वे कर्तव्यनिष्ठ होते हैं बिना दूसरों को हानि पहुंचाये। संत एवं सच्चे मनुष्य अपने पवित्र कर्मों को करने के लिए निष्ठावान होते हैं, उन्हें वे समर्पित होकर करते हैं, परंतु वे जानबूझकर एवं शक्ति चले तक दूसरों की हानि नहीं करते।

वे प्रामाणिक होते हैं बिना मनमानी किये। वे मनमानीपन, उच्छृंखलता एवं उद्दंडता छोड़कर बड़ों की तथा पवित्र रहनी की मर्यादा में रहते हैं, इसलिए उनके जीवन के विचार, वाणी और व्यवहार प्रामाणिक हो जाते हैं। इसलिए उनका पूरा जीवन ही प्रामाणिक हो जाता है।

वे ज्योतित होते हैं, बिना दूसरों को चौंधियाए। वे दिखावा नहीं करते, अपने को महिमा-मंडित कर दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए प्रयास नहीं करते, अपितु सरल, सादा, और मध्यवर्ती व्यवहार करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं और उनका पूरा जीवन पवित्र ज्ञान तथा उसके आचरण से प्रकाशित होता है।

59. आत्म और लोक कल्याण के लिए मध्यवर्ती पथ उत्तम है

1. *In leading Men and in the service of Heaven*
   there is nothing better than 'limitation'.

2. *For only through limitation*
   can one deal with things early on.
   Through dealing with things early on
   one redoubles the forces of Life.
   Through these redoubled forces of Life
   one rises to every occasion.

3. *If we rise to every occasion,*
   no-one knows our limits.
   If no-one knows our limits
   we are capable of possessing the world.
   If one possesses the Mother of the World
   one gains eternal duration.
   This is the DAO of the deep root,
   of the firm ground,
   of eternal existence
   and of lasting sight.

अनुवाद

1. *मनुष्यों का मार्ग-दर्शन करने में,*
   और स्वर्ग की सेवा करने में,
   मध्यवर्ती होने से उत्तम और कुछ नहीं है।

2. *मध्यवर्ती रहकर ही,*
   परिस्थितियों से समय रहते निपटा जा सकता है।

परिस्थितियों को समय रहते निपटा देने से,
आप अपनी जीवन-शक्ति को द्विगुणित करते हैं।
द्विगुणित जीवन-शक्ति से,
आप समयोचित कार्य कर सकते हैं।
समयोचित कार्य करके,
आप अपनी सीमाओं से ऊपर उठ जाते हैं।
सीमा रहित होकर आप,
संसार को धारण करने में सक्षम होते हैं।

3. *संसार की माता को धारण करके,*
आप शाश्वत अवधि को उपलब्ध होते हैं।
यही है ताओ—गहरी जड़ों वाला,
दृढ़ आधार वाला, शाश्वत अस्तित्व वाला,
और चिरदृष्टि संपन्न।

भावार्थ—1. अपने आप में स्थित रहने के लिए और अन्य मनुष्यों को उचित राय देने के लिए मध्यम-मार्ग में चलने के समान उत्तम कुछ नहीं है।

2. मध्यम-मार्ग में चलकर ही, समय के भीतर प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों से निपटा जा सकता है। जब हम समय के भीतर परिस्थितियों से निपट लेते हैं, तब अपनी जीवनी-शक्ति को दो गुणा बढ़ा लेते हैं। इस बलवान जीवनी-शक्ति से हम अपने कार्य समय-समय पर ठीक से कर लेते हैं। जब हम अपना कार्य समयोचित कर लेते हैं, तब हम अपने जीवन की निम्न सीमा से ऊपर उठ जाते हैं। असीम आत्मशक्ति में पहुंचकर हम अपने व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक काम करने में पूर्ण बलशाली होते हैं।

3. विश्व-नियम संसार की माता है। उसको पहचान कर वैराग्यपूर्वक जीवन में चलकर हम अनंत आत्मिक जीवन को प्राप्त करते हैं। यह विश्व-नियम ही ताओ है जिसकी जड़ गहरी है। इसका आधार दृढ़ है। यह नित्य सत्ता वाला है। यह स्थिर दृष्टि वाला है।

भाष्य—मनुष्यों का मार्ग-दर्शन करने में, और स्वर्ग की सेवा करने में मध्यवर्ती होने से उत्तम और कुछ नहीं है। इस अध्याय का मुख्य उपदेश है मध्यवर्ती रहकर आत्म-कल्याण तथा लोक-कल्याण का काम करना। जेम्स लेगी ने 'Moderation' शब्द का प्रयोग किया है और रिचर्ड विल्हम ने 'Limitation' शब्द का प्रयोग किया है। 'Moderation' (मोडरेशन) का अर्थ है मंदन, नरमी; और 'Limitation' (लिमिटेशन) का अर्थ है प्रतिबंध, सीमा, परिसीमा। यहां लिमिटेशन का अनुवाद मध्यवर्ती किया गया है। यह अर्थ

मोडरेशन के भी निकट है।

भोग-मार्ग में पड़ना दुखद है, किंतु त्याग के नाम पर घोर तप भी दुखद है। सिद्धार्थ गौतम, भोग-मार्ग त्याग कर घोर तप में लग गये, किंतु पीछे उनको अपनी भूल का अनुभव हुआ और उन्होंने घोर तप छोड़कर मध्यम-मार्ग अपनाया। भोग नहीं, और घोर तप नहीं। इसीलिए तथागत बुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग कहा जाता है। सद्‌गुरु कबीर मध्यम-मार्गी थे। वे कहते हैं—

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप॥
साधू ऐसा चाहिए, दुखै दुखावै नाहिं।
पान-फूल छेड़ै नहीं, रहै बगीचा माहिं॥
सबही भूमि बनारसी, सब निर गंगा होय।
ज्ञानी आतम राम है, जो निर्मल घट होय॥

मोमबत्ती यदि दोनों तरफ से जला दी जाये, तो जलेगी तेज, परंतु शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी, किंतु यदि केवल ऊपर के सिरे से जलायी जाये तो वह पहले की अपेक्षा कम प्रकाश तो देगी, परंतु देर तक जलेगी। बहुल ढीलाढाला होकर चलना और तेज दौड़ना, दोनों ही गलत है। गीताकार भी कहते हैं, **आहार, विहार, चेष्टा, कर्म, सोना और जागना मध्यवर्ती होने से योग दुखों का नाशक होता है।**[1]

संत लाओत्ज़े कहते हैं कि मनुष्यों को मार्गदर्शन करने के लिए भी व्यवहार तथा साधना दोनों ही मध्यवर्ती ठीक हैं; और स्वर्ग की सेवा करने के लिए भी वही पथ उत्तम है। ग्रंथकार का स्वर्ग आकाश में नहीं है। उनका स्वर्ग अंतरात्मा की तरफ लौटना है। सबकुछ भूलकर अंतरात्मा में लीनता स्वर्ग में पहुंचना है।

कबीर साहेब ने कहा कि बगीचा में रहे, किंतु पत्तों-फूलों को न छेड़े। इसका अर्थ है कि संसार में रहे, किंतु किसी की क्षति न करे। साधु, सज्जन एवं सही मनुष्य वही है जो न स्वयं किसी की बात से दुखी हो और न जान-बूझकर किसी को दुखावे। जो स्वयं दुखी नहीं होता और दूसरों को नहीं दुखाता, वह धन्य है। संसार में रहकर दूसरों की भी सेवा करे, किंतु किसी की हानि न करे। यही मध्यम-मार्ग है। यही मार्ग अपने लिए है और दूसरों को उपदेश देने के लिए है।

---

1. **युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ गीता 6/17॥

मध्यवर्ती रहकर ही परिस्थितियों से समय रहते निपटा जा सकता है। ढीलढाल मनुष्य दीर्घसूत्री होता है। वह छोटा काम करने में भी बहुत देर लगाता है और समय निकल जाता है, परंतु उसका काम पूरा नहीं होता। दूसरा है 'Living Fast' (लिविंग फास्ट), अधिक जल्दबाज। वह जल्दी काम करने के चक्कर में उसे बिगाड़ देता है। अधिक महत्त्वाकांक्षी दुख में जीता है। मध्यवर्ती व्यक्ति धैर्य से काम करता है। उसकी गतिविधि शिथिल नहीं और भागादौड़ी की नहीं, अपितु संतुलित रहती है। इसलिए वह समय के भीतर अपनी परिस्थितियों, काम-धंधों से निपट लेता एवं पूरा कर लेता है।

परिस्थितियों को समय रहते निपटा देने से, आप अपनी जीवन-शक्ति को द्विगुणित करते हैं। मनुष्य जब समय के भीतर अपना काम पूरा कर लेता है, तब उसकी जीवन-शक्ति दुगुनी बढ़ जाती है। यहां जीवन-शक्ति का अर्थ है आत्मविश्वास, साहस। उसका साहस बढ़ जाता है। यदि समय के भीतर काम पूरा न कर सका, तो हताश होता है। मान लीजिए, आपकी लड़की या लड़के का विवाह अगले अमुक महीने में करना है। उसके पहले मकान बना लेना है। मकान के लिए सारी सामग्री उपलब्ध है, किंतु काम करवाने वाला ढीलढाल है, तो मकान का काम शिथिलता से चलेगा और विवाह का समय आ जायेगा और दरवाजे पर सरिया, बालू, ईंटें बिखरे रहेंगे। मकान अधूरा पड़ा रहेगा। कर्ता का मन भी हताश होगा, निंदा का पात्र तो होगा ही। किंतु यदि उसने चुस्ती और धैर्य से काम किया, तो विवाह के पहले मकान बन गया, रंगाई-पोताई हो गयी, खिड़कियां फाटक भी लग गये। ऐसी स्थिति में कर्ता का मन प्रसन्न और उत्साहित होगा। यदि उसने जल्दबाजी में ऐसा काम किया कि मकान की छत ढलने के बाद वह भहराकर नीचे आ गयी, तो भी उसे हताश होना है और धन-समय की बरबादी अलग। असुविधा उसमें होना ही है। अतएव मध्यवर्ती व्यक्ति ही अपना काम समय के भीतर सुचारु रूप से करके प्रसन्न होता है।

द्विगुणित जीवन-शक्ति से, आप समयोचित कार्य कर सकते हैं। जब मनुष्य के जीवन में दोनों छोर की अतियां नहीं होती हैं, अपितु वह मध्यवर्ती एवं धैर्यवान होता है, तब उसकी जीवन-शक्ति, उसका साहस, उसका आत्मविश्वास प्रौढ़ होता है। ऐसा व्यक्ति अपने हर काम को समय के भीतर कर लेता है। इससे उसके चित्त में प्रसन्नता एवं शांति रहती है।

समयोचित कार्य करके, आप अपनी सीमाओं से ऊपर उठ जाते हैं। जो अपना सब काम समय के भीतर कर लेता है, वह दुर्बलताओं से ऊपर उठ जाता है। यही अपनी सीमाओं से ऊपर उठना है। सोना, जागना, शौच, स्नान, जलपान, भोजन, काम-धंधा, स्वाध्याय, ध्यान, व्यायाम, भ्रमण, जीवन के सारे कार्य जो समयबद्ध एवं समय के भीतर करता रहता है, वह अपनी दुर्बलताओं

से ऊपर उठ जाता है। मुख्य दुर्बलता आसक्ति है। जिसने देहासक्ति, विषयासक्ति एवं लोकैषणा को जीत लिया, उसने अपनी पुरानी सीमाओं से अपने को ऊपर उठा लिया। यह सब काम करने के लिए मनुष्य को मध्यवर्ती होना चाहिए।

सीमा-रहित होकर आप संसार को धारण करने में समर्थ होते हैं। राग-द्वेष सीमाएं बनाते हैं। जो मनुष्य राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता है, वह सीमा से परे हो जाता है। ऐसा मनुष्य संसार को धारण करने में समर्थ होता है। यहां संसार का अर्थ है अपना कार्य-क्षेत्र, अपना दायित्व, जिम्मेदारी। उसे धारण करने में, उसे निभाने और निपटाने में वह समर्थ हो जाता है।

राग-द्वेष में लिप्त व्यक्ति कलह में रहता है। वह अपना दायित्व ठीक से नहीं निभा सकता। जो राग-द्वेष की संकुचितता, सीमा को छोड़कर समता, प्रेम और संतोष के धरातल पर पहुंच जाता है, वही अपना दायित्व ठीक से निभाने में समर्थ होता है। वह अपने बाहर के दायित्व को भी कुशलता से निभा लेता है और भीतर तो शांत होता ही है।

संसार की माता को धारण करके, आप शाश्वत अवधि को उपलब्ध होते हैं। ताओ संसार की माता है, वह है विश्व-नियम। जब हम विश्व के नियम को समझते हैं, तब दैववाद, व्यक्ति-ईश्वरवाद तथा अलौकिकता का भ्रम मिट जाता है। विश्व-नियम हमारे जीवन में भी है, उसको समझकर हम उसके अनुसार चलने लगते हैं। संयम जीवन का ताओ है, नियम है। उसका पूर्ण पालन हो जाने पर हम अनंत आत्मिक शांति में लीन हो जाते हैं। यही शाश्वत अवधि को उपलब्ध हो जाना है। शरीर नश्वर है और आत्मा शाश्वत है। शरीर से मन हटकर जब आत्मा पर केंद्रित हो जाता है, तब हमारा जीवन शाश्वत हो जाता है। शाश्वत हम हैं ही। अबोध-वश हमारी दृष्टि क्षणभंगुर देहादि पर होने से हम अनित्यता की धारा में बहते हैं। जब शाश्वत आत्मा का बोध हो जाने पर दृष्टि उसी पर हो जाती है, तब हम शाश्वत में जीने लगते हैं, और शाश्वत आत्मा में ही स्थित हो जाते हैं।

यही है ताओ, गहरी जड़ों वाला, दृढ़ आधार वाला, शाश्वत अस्तित्व वाला, और चिरदृष्टि संपन्न। विश्व-नियम ताओ है। इसकी जड़ गहरी है। इसका आधार अचल है। यह शाश्वत सत्तायुक्त है और स्थिर दृष्टिवाला है। प्रवहमान जगत को विश्व-नियमों से स्वचालित समझना और आत्मिक जगत को—मन-इंद्रियों को पूर्ण संयमित कर लेना ताओ का पूर्ण आदर है, ताओ की उपासना है। उपर्युक्त तथ्य गहरी जड़ों वाला है, दृढ़ आधार वाला है, शाश्वत-अस्तित्व वाला है और स्थिर दृष्टिवाला है।

प्रवहमान विश्व-प्रपंच अपने स्वत: निहित नियमों से चल रहा है, इस तथ्य को समझ जाने से मन की दैवीकल्पना समाप्त हो जाती है; और मन-इंद्रियों पर पूर्ण संयम हो जाने से मन के राग-द्वेष समाप्त हो जाते हैं। यह सब ताओ के ज्ञान का फल है, विश्व-नियम को समझकर उसका आचरण करने का परिणाम है।

60. शासन-व्यवस्था में दृढता, किंतु कोमलता चाहिए

1. *A great country must be led*
   the way one fries small fish.

2. *If one administers the world according to DAO,*
   then the ancestors do not swarm about as spirits.
   Not that the ancestors are not spirits
   but their spirits do not harm men.
   Not only do the spirits not harm men,
   the Man of Calling, too, does not harm them.
   If then, these two powers do not harm one another,
   then their Life-Forces are united in their effect.

अनुवाद

1. *एक महान राज्य पर शासन वैसे हो,*
   जैसे एक छोटी मछली को तलते हो।

2. *जब संसार का शासन ताओ के अनुसार होता है,*
   तब पितर भूतों के रूप में नहीं मंडराते।
   ऐसा नहीं है कि पितर नहीं होते हैं,
   किंतु उनकी आत्माएं आदमी को हानि नहीं पहुंचातीं।
   ऐसा नहीं है कि आत्माएं मात्र ही नुकसान नहीं पहुंचातीं,
   संत से भी आदमी को कोई नुकसान नहीं होता।
   जब ये दोनों शक्तियां एक दूसरे को दुष्प्रभावित न करें,
   तब उनकी जीवनशक्ति मिलकर ज्यादा प्रभावी होगी।

भावार्थ—1. एक महान राज्य की शासन-व्यवस्था इतनी सावधानी और धैर्य से करना चाहिए जैसे एक छोटी मछली सावधानी से तली जाती है।

2. जब विश्व-नियम के अनुसार संसार का शासन होता है, तब पितर भूतों के रूप में मनुष्य के ऊपर नहीं घूमते। ऐसी बात नहीं है कि पितर नहीं होते हैं,

परंतु वे मनुष्य को दुख नहीं देते। संत से भी मनुष्य की हानि नहीं होती है। जब ये दोनों शक्तियां एक दूसरे पर बुरा प्रभाव नहीं डालती हैं, तब इनकी जीवन-शक्तियां इकट्ठी होकर अधिक प्रभावशाली होती हैं।

भाष्य—एक महान राज्य पर शासन वैसे हो, जैसे एक छोटी मछली को तलते हो। जब लोग छोटी मछली को कड़ाही में तलते हैं, तब बड़ी सावधानी रखते हैं। मछली कच्ची न रह जाये और जल कर निरर्थक न हो जाये। वैसे ही बड़े राज्य की शासन-व्यवस्था सावधानी और धैर्य से करना चाहिए। बड़े राज्य की ही नहीं, छोटे समाज और परिवार की व्यवस्था भी बड़ी सावधानी और धैर्य से करना चाहिए। हमारी किसी भी व्यवस्था में उसके फल के भोक्ता मनुष्य होते हैं। मनुष्यों का दुख जितना घटाया जा सके उतना घटाया जाये और उनको जितनी सुविधा और स्वतंत्रता दी जा सके उतनी दी जाये। यही राज्य, पार्टी, कंपनी, समाज और परिवार की व्यवस्था का उत्तम फल है।

शासक अपने को ताबेदार एवं सेवक माने और देश की प्रजा तथा पार्टी, कंपनी, समाज एवं परिवार के लोगों को देवी-देवता माने और उनकी यथाशक्ति सेवा करे।

जब संसार का शासन ताओ के अनुसार होता है, तब पितर भूतों के रूप में नहीं मड़राते। ऐसा नहीं है कि पितर नहीं होते हैं, किंतु उनकी आत्माएं आदमी को हानि नहीं पहुंचातीं। ऐसा नहीं है कि आत्माएं मात्र ही नुकसान नहीं पहुंचातीं। संत से भी आदमी को कोई नुकसान नहीं होता। जब ये दोनों शक्तियां एक दूसरे को दुष्प्रभावित न करें, तब उनकी जीवन-शक्ति मिलकर ज्यादा प्रभावी होगी।

उपर्युक्त अनुच्छेद का सरल अर्थ है कि जब विश्व-नियम के अनुसार, ऋत एवं सत्यधर्म के अनुसार राष्ट्र एवं समाज पर शासन होता है, तब मरे हुए पितर भूत बनकर मनुष्यों के ऊपर अनिष्ट करने के लिए नहीं घूमते। पितर होते हैं, किंतु वे मनुष्यों को कष्ट नहीं देते। संत भी हानि नहीं पहुंचाते। जब पितर और संत एक दूसरे पर खराब प्रभाव नहीं डालते, तब वे एक दूसरे से मिलकर बलवान हो जाते हैं।

जेम्स लेगी लिखते हैं, **इस दूसरे पैराग्राफ का लाओत्ज़े का कुछ भी अर्थ रहा हो, यह पीछे और वर्तमान के लिए ताओवाद के संबंध में उनके द्वारा दिवंगत आत्माओं के लिए अंधविश्वास की नींव डाल दी गयी।**[1]

---

1. **Whatever Lao-tze meant to teach in para. 2, he laid in it a foundation for the superstition of the later and present Taoism about the spirits of the dead. (Tao-Te-Ching, James Legge)**

रिचर्ड विल्हम लिखते हैं, **यह स्पष्ट नहीं है कि यहां मात्र मृत पितरों की आत्मा के लिए कहा जा रहा है, या फिर प्राकृतिक शक्तियों के लिए भी। उपर्युक्त पाठ का अर्थ इस ढंग से भी किया जा सकता है कि संसार का शासन ताओ के अनुसार होने पर प्राकृतिक शक्तियां अपने को हानिकारक ढंग से प्रकट नहीं करेंगी, और वे शांत रहेंगी। इतना ही नहीं, जो गलत शक्तियां हैं, वे भी मनुष्यों का नुकसान नहीं करतीं। अर्थात प्राकृतिक विपत्तियों से वह राज्य मुक्त होता है।**[1]

रिचर्ड विल्हम आगे लिखते हैं, **एक अनिच्छुक और शांतिप्रिय सरकार के प्रभाव से अदृश्य जगत भी शांत होता है जबकि संकट के समय अशुभ एवं विचित्र लक्षण उभरते हैं।**[2]

संत लाओत्ज़े जैसे मंजे हुए महापुरुष के वचनों में इस साठवें अध्याय का दूसरा अनुच्छेद दिवंगत आत्माओं का भूत-प्रेत बनकर मनुष्यों के ऊपर मड़राने का भ्रम फैलाता है। लगता है ग्रंथकार के समय में भूत-प्रेतों का अंधविश्वास इतना गहरा था कि वे इससे अपनी वाणी को बचा नहीं सके।

मरे हुए प्राणियों के आत्मा अपने कर्मों के अनुसार देह धारण करते हैं। भूत-प्रेत कोई योनि नहीं है। यह केवल भ्रांति है। परंतु उक्त वचन को लेकर चीन में ताओवाद में भूत-प्रेत तथा उसके संबंध में झाड़-फूंक का महाभ्रम आज भी फैला है।

इस अध्याय में पितर-भूतों के साथ संतों का जोड़ा जाना और भी भ्रांतिपूर्ण है। यह सच है कि मनुष्य के कर्म अदृश्य प्राकृतिक शक्तियों को प्रभावित करते हैं और उनके फल उनसे मिलते हैं। अधिक खाने से पाचनशक्ति खराब होगी ही। पवित्र आचरण से आसपास का वातावरण सुखद होना पक्का है और गंदे आचरण से दुखद होना निश्चित है।

इस अध्याय का पहला अनुच्छेद ही महत्त्वपूर्ण है। वह है किसी जनसमूह की शासन-व्यवस्था करने के लिए उतावलापन, उद्वेग और जोश-खरोस आदि

---

1. **In the passage concerning ghosts and their effects, text presents some difficulties. In particular, it is unclear whether this refers only to the spirits of the dead or to nature spirits also. A possible translation would be : 'If one rules the world according to DAO then *mana* does not manifest itself as daemons (or nature spirits, in other words, they remain quiet). Apart from the fact that *mana* does not manifest itself in daemons, the daemons do not harm men'—i.e. they act 'normally', there will be no natural disasters.**
2. **A 'reluctant' and peaceable government will have the effect that the invisible world will also remain calm; while in times of unrest 'signs and wonders' will occur. (Tao Te Ching, Richard Wilhelm)**

अहितकर हैं। शासन करने वाले को ध्यान रखना चाहिए कि उसके सामने अनेक जटिल प्रश्न और समस्याएं आयेंगी। उसे मध्यमार्ग अपनाना चाहिए। ढीलापन ठीक नहीं और जल्दबाजी ठीक नहीं। विपक्ष और विरोधी की बातें धैर्य से सुनना चाहिए और उनसे प्रेरणा लेकर सकारात्मक काम करना चाहिए। हमारे मन की दुर्बलता है कि हम प्रिय लगने वाली बातें ही सुनना चाहते हैं। केवल प्रिय लगने वाली बातें धोखा दे सकती हैं। प्रतिकूल बातें धैर्य और निर्विकार भाव से सुनकर निष्पक्षतापूर्वक निर्णय लेने वाला सफल होता है। अतएव, अपने मन के प्रतिकूल बातें धैर्य से सुने और निष्पक्षता, विनम्रता, आग्रहहीनता का भाव रखकर सबके हित का काम करे। राष्ट्र, पार्टी, कंपनी, समाज, परिवार, सब जगह की शासन-व्यवस्था चलाने के लिए त्याग, धैर्य, विनम्रता, आग्रहहीनता, सरलता का आचरण ही पथ है।

61. अपने को नीचे रखने वाला ऊपर उठता है

1. *By keeping itself downstream*
   a great realm becomes the unification of the world.

2. *It is the female in the world.*
   The female always wins over the male by its stillness.
   By its stillness it keeps below.

3. *When the great realm puts itself below the small*
   it thereby wins the small realm over.
   When the small realm puts itself below the great
   it is thereby won over by the great realm.

4. *Thus, by keeping below, the one wins over*
   and the other, by keeping below, is won over.
   The great realm desires nothing
   but to take part in the service of men.
   Thus each attains what it wants:
   but the great must remain below.

अनुवाद

1. *जल की धारा के अनुरूप,*
   अपने को नीचे रखकर ही,
   एक विशाल राज्य संसार के लिए
   मिलन बिंदु बनता है।

2. *यह संसार में स्त्री है।*
   स्त्री सदैव अपने मौन से पुरुष पर विजय पाती है।
   मौन रहकर यह अपने को नीचे रखती है।

3. *जब विशाल राज्य अपने को छोटे राज्य के नीचे रखता है,*
   तब वह छोटे राज्य पर विजय पाता है।

जब छोटा राज्य अपने को बड़े राज्य के नीचे रखता है,
तब यह बड़े राज्य द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है।

4. *इस प्रकार अपने को नीचे रखकर एक जीतता है,*
और दूसरा अपने को नीचे रखकर आत्मसात होता है।
विशाल राज्य कुछ चाहता नहीं,
सिर्फ मनुष्यों की सेवा में भागीदारी चाहता है।
इस प्रकार, प्रत्येक को उसके इच्छानुसार मिलता है,
किंतु बड़ा अपने को निस्संदेह नीचे रखे।

भावार्थ—1. जल की धारा नीचे बहती है, किंतु वह सबका पोषण करती है। इसी प्रकार अपने को नीचे रखकर ही एक बड़ा राज्य दुनिया के लिए मिलन-बिंदु का आदर्श स्थापित कर सकता है।

2. विनम्रता संसार में स्त्री है। स्त्री मौन रहकर सदैव पुरुष पर विजयी होती। क्योंकि स्त्री मौन रहकर अपने को नीचे रखती है।

3. जब बड़ा राज्य अपने को छोटे राज्य से नीचे रखकर विनम्रता से उसके साथ व्यवहार करता है, तो उसने मानो छोटे राज्य पर विजय पा ली। इसी प्रकार जब छोटा राज्य अपने को बड़े राज्य के नीचे रखता है, तब वह बड़े राज्य द्वारा सेवा के लिए अपना लिया जाता है।

4. इस प्रकार बड़ा राज्य अपने को नीचे रखकर मानो छोटे राज्य को जीत लेता है; और छोटा राज्य अपने को नीचे रखकर बड़े राज्य द्वारा सेवा के लिए आत्मसात कर लिया जाता है। बड़े राज्य का शासक कुछ इच्छा नहीं रखता है, केवल मनुष्यों की सेवा करने के लिए हिस्सेदारी चाहता है। इस तरह सबको अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार लाभ मिलता है। बड़े को चाहिए कि वह संशय-रहित होकर अपने को नीचे रखे।

भाष्य—संत लाओत्ज़े के अनेक प्रिय उदाहरणों में जल और स्त्री की विनम्रताएं मुख्य उदाहरण हैं। जल नीचे चलता है। यहां तक कि वह ऐसी जगहों में भी पहुंचता है जहां से लोग घृणा करते हैं। परंतु जल सारी जड़-चेतन-सृष्टि का परम पोषक है। वह अपने को सदैव नीचे रखकर सबका पोषण करता है। स्त्री मौन रहकर और अपने को नीचे रखकर पुरुष पर विजय प्राप्त करती है। ग्रंथकार कहते हैं कि सभी क्षेत्रों में सफलता का हेतु है अपने को नीचे रखकर, विनम्र रखकर, सहनशीलता तथा धैर्य धारण कर तथा मौन होकर सेवा करना।

चीन जैसा आज एक राष्ट्र है, वैसा पहले नहीं था। चीन में अनेक छोटे-बड़े राज्य थे। आये दिन बड़े राज्य द्वारा छोटा राज्य हड़प लिया जाता था।

इसमें निरपराध लोगों की हत्याएं होती थीं। शासक अपने अहंकार के पोषण के लिए किसी राज्य पर आक्रमण करता था। उसमें निर्दोष सैनिक मारे जाते थे और प्रजा पीड़ित होती थी; और युद्ध के बाद देश में दरिद्रता फैलती थी, क्योंकि धन, जन और व्यवस्था का विध्वंस हो जाता था। इसलिए संत लाओत्ज़े आक्रमण का विरोध करते हैं।

इस अध्याय में वे कहते हैं, **जल की धारा के अनुरूप अपने को नीचे रखकर ही एक विशाल राज्य संसार के लिए मिलन-बिंदु बनता है।** जल की धारा नीचे बहती है और सबका पोषण करती है, वैसे बड़ा राज्य अपने को नीचे रखकर, विनम्र रखकर छोटे राज्य की सेवा करे। उसे हड़पने की कुचाल न करे।

यह संसार में स्त्री है। स्त्री सदैव अपने मौन से पुरुष पर विजय पाती है। मौन रखकर यह अपने को नीचे रखती है। संत लाओत्ज़े का यह प्रिय उदाहरण है। हर मनुष्य में पुंसत्व और स्त्रीत्व है। साहस, पुंसत्व अर्थात पुरुषत्व है और विनम्रता स्त्रीत्व है। आत्मकल्याण और लोककल्याण के संबंध में सेवा करने के लिए विनम्रता महान साधन है।

जब विशाल राज्य अपने को छोटे राज्य के नीचे रखता है, तब वह छोटे राज्य पर विजय पाता है। जब छोटा राज्य अपने को बड़े राज्य के नीचे रखता है, तब वह बड़े राज्य द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है। विशाल राज्य द्वारा अपने को छोटे राज्य के नीचे रखने का अर्थ है कि वह छोटे राज्य को दबाता नहीं, अपितु विनम्र होकर उसकी सहायता करता है, सेवा करता है। बड़े राज्य द्वारा छोटे राज्य की सेवा करना ही उसका छोटे राज्य पर विजय पाना है। **जब छोटा राज्य अपने को बड़े राज्य के नीचे रखता है, तब वह बड़े राज्य द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है।** यहां आत्मसात कर लेने का अर्थ है सेवा-सहायता करने के लिए उसे स्वीकार कर लेना। कुल मिलाकर ग्रंथकार का मंतव्य है कि छोटे-बड़े राज्य आपस में प्रेम से रहें। दोनों राज्य के राजा विनम्र रहें और बड़ा छोटे की सेवा एवं सहयोग करे।

इस प्रकार अपने को नीचे रखकर एक जीतता है, और दूसरा अपने को नीचे रखकर आत्मसात होता है। विशाल राज्य कुछ चाहता नहीं, सिर्फ मनुष्यों की सेवा में भागीदारी चाहता है। बात स्पष्ट है। छोटे-बड़े सब निष्काम और निर्मान रहें और एक दूसरे की सेवा और सहयोग करें।

इस प्रकार प्रत्येक को उसके इच्छानुसार मिलता है, किंतु बड़ा अपने को निस्संदेह नीचे रखे। यदि विनम्रता और निष्कामतापूर्वक रहे तो उसकी इच्छा सात्विक हो जाती है और उसके अनुसार कार्य होना सहज हो जाता है। ग्रंथकार कहते हैं कि विनम्र सबको होना चाहिए, परंतु **बड़ा अपने को निस्संदेह नीचे**

रखे। वस्तुतः बड़ा वही है जो अपने को नीचे रखता है। हमारे मन का अहंकार इस परम सत्य को नहीं समझने देता है। इसीलिए हम जीवनपर्यंत ठोकर खाते हैं। विनम्रता रूपी महानता को जिसने समझा और उसका पूर्ण पालन किया, वह धन्य हो गया।

जेम्स लेगी लिखते हैं, **ये विचार निश्चय ही उसके शब्दों की याद दिलाते हैं, जो लाओत्ज़े से भी महान हैं—जो अपने को विनम्र रखता है, वह ऊंचा उठाया जायेगा।**[1] उनका संकेत ईसामसीह की ओर है।

संघर्ष दुखदायी है, समर्पण शांतिदायी है। लड़ना हारना है, पहले से हार मान लेना विजय है। यही आध्यात्मिक साधना का पथ है। सबसे पीछे, सबसे नीचे रहकर और सबकी निर्विकार-भाव से सहकर ही निश्चल शांति में जीया जा सकता है।

---

1. **The language can hardly but recall the words of a greater than Lao-tze—'He that humbleth himself shall be exalted.'**

(Tao-Te-Ching, James Legge)

62. ताओ का अभ्यास सुखकर है

1. *DAO is the homeland of all things,*
   the treasure of good men,
   the protection of non-good men.

2. *One may go to the market with beautiful words.*
   One may shine before others
   with honourable conduct.
   But the non-good among men - why should one throw them away?

3. *Therefore the ruler has been appointed*
   and princes have their office.
   Even if one had bejewelled sceptres
   to send forth in a solemn quadriga:
   nothing matches the gift
   which is: offering this DAO
   on one's knees to the ruler.

4. *Why did the ancients so treasure this DAO?*
   Is it not because it has been said of it:
   'Whosoever asks will receive;
   Whosoever has sinned will be forgiven'?
   Therefore is DAO the most exquisite thing on earth.

अनुवाद

1. *ताओ सब वस्तुओं की गृहभूमि है,*
   यह अच्छे मनुष्यों का कोष है,
   जो अच्छे नहीं हैं, उनका आश्रयस्थल है।

2. *सुंदर शब्दों से युक्त आप बाजार जा सकते हैं।*
   श्रेष्ठ आचरण द्वारा दूसरों से उत्कृष्ट हुआ जा सकता है।

किंतु मनुष्यों में जो अच्छे नहीं हैं,
उनका तिरस्कार क्यों हो?

3. *अतएव, शासक नियुक्त होता है,*
और राजकुमार अपने पद संभालते हैं।
भले ही कोई रत्नजड़ित राजछत्र और
शानदार चार घोड़ों का दल उन्हें भेंट करे,
कोई भी इस उपहार की बराबरी नहीं कर सकता,
जो घुटनों के बल सम्राट को ताओ का समर्पण है।

4. *पुराने लोग ताओ को इतना मूल्य क्यों देते थे?*
क्या इसके बारे में ऐसा नहीं कहा गया था,
'जो मांगेगा उसे मिलेगा,
जिसने पाप किया उसे क्षमा मिलेगी?'
अतएव, ताओ इस पृथ्वी पर सबसे उत्कृष्ट है।

भावार्थ—1. ताओ सभी वस्तुओं का आश्रय है और अच्छे मनुष्यों का खजाना है। जो लोग अच्छे नहीं हैं, उनका भी रक्षक है।

2. जब आप बाहर निकलें, बाजार जायें, लोगों से मिलें, उनसे मीठी और सारयुक्त बातें करें। अपने आचरण को श्रेष्ठ बनाना चाहिए, यही स्वयं को श्रेष्ठ बनाना है। परंतु जो लोग अच्छे नहीं हैं, उनका तिरस्कार क्यों किया जाये?

3. शासक पद पर नियुक्त होते हैं और युवराज अपना पद सम्हालता है। उन्हें कोई रत्नजड़ित राजछत्र भेंट करता है और कोई उत्तम चार घोड़ों का दल भेंट करता है। परंतु राजा के लिए सर्वोत्तम उपहार उस मंत्री का है जो उसके सामने घुटने टेककर ताओ के अनुसार मंत्रणा देता है।

4. पहले के लोग ताओ को इतना महत्त्व क्यों देते थे? क्या इसके विषय में ऐसा नहीं कहा गया है कि जो मांगेगा उसको मिलेगा। जिसने पाप किया, उसे क्षमा मिलेगी। इसलिए ताओ, विश्व-नियम इस धरातल पर सर्वोच्च है।

भाष्य—ताओ सब वस्तुओं की गृहभूमि है। यह अच्छे मनुष्यों का कोष है। जो अच्छे नहीं हैं, उनका आश्रयस्थल है। ताओ विश्व-नियम है। यही सभी निर्मित पदार्थों का मूल है। विवेकवान मनुष्यों का यह खजाना है। विश्व-नियम को समझकर विवेकवान उसके अनुसार चलता है और जीवन में पूर्ण संतुष्ट हो जाता है। यह विश्व-नियम है कि बनी हुई वस्तुएं मिटती हैं, मिला हुआ छूटता है, जन्मा हुआ मरता है, जीव के साथ अंततः कुछ नहीं रह जाता है। इस तथ्य को समझने वाला अच्छा मनुष्य है। जो इस वास्तविकता को निरंतर मन में रखता है, वह चिंता नहीं करता। सबके विचार, संस्कार, गुण-कर्म तथा समझ

अलग-अलग हैं, इसलिए सबका सहकर हमें निर्विकार भाव से रहना चाहिए। इसी रहनी में रहकर हम दुखी नहीं होंगे।

जो लोग अच्छे नहीं हैं, जिनमें वास्तविकता का विवेक नहीं है; उनके लिए भी यह विश्व-नियम ही आश्रय स्थल है, आधार है। वे भी इसी में वर्तमान करते एवं व्यवहार करते हैं और जैसा करते हैं, वैसा फल पाते हैं।

सुंदर शब्दों से युक्त आप बाजार जा सकते हैं। यहां बाजार जाना उपलक्षण मात्र है। भाव है कि दिन भर मिलने वाले मनुष्यों से आप सत्य, प्रिय तथा हितकर बातें कर सकते हैं। मीठा बोलने में क्या लगता है? जो लोगों से मीठा भी नहीं बोल सकता है वह महा दरिद्र है। याद रखो, मीठे भाव, मीठे वचन और मीठे व्यवहार करके ही आप सुखी रह सकते हैं और दूसरों को सुख पहुंचा सकते हैं।

श्रेष्ठ आचरण द्वारा दूसरों से उत्कृष्ट हुआ जा सकता है। हर मनुष्य की यह इच्छा रहती है कि हम दूसरों से आगे बढ़ जायें। इसके लिए अपने आचरण ऊंचे करो। निर्मानता, निष्कामता, संतोष, क्षमा, शील, सहन, त्याग, शांति आदि का जीवन में आचरण आयेगा, तो आप स्वतः ऊपर उठ जायेंगे। ऊपर उठ जाने का तात्पर्य है; अपने आप में संतुष्ट हो जाना।

किंतु मनुष्यों में जो अच्छे नहीं हैं, उनका तिरस्कार क्यों हो? जो लोग अच्छे आचरण के नहीं हैं, उनका तिरस्कार कर हमें क्या मिलेगा? अतएव समझदार मनुष्य सबका हितचिंतन करता है। हां, वह कुसंग से अपने को अलग रखता है।

अतएव, शासक नियुक्त होता है, और राजकुमार अपने पद सम्हालते हैं। भले ही कोई रत्नजड़ित राजछत्र और शानदार चार घोड़ों का दल उन्हें भेंट करे; कोई भी इस उपहार की बराबरी नहीं कर सकता, जो घुटनों के बल सम्राट को ताओ का समर्पण है। यह सबका भाव है कि राजा को समर्पित की जानेवाली कोई भेंट उतना महत्त्व नहीं रखती जितना कि मंत्री द्वारा विश्व-नियम के अनुसार दी जाने वाली मंत्रणा है।

चीन में उस समय जब मंत्री राजा एवं सम्राट को मंत्रणा देता था, तब वह घुटने टेककर विनयावनत मुद्रा में रहता था। खास बात है ताओ के अनुसार मंत्रणा देना। वह है, राजा एवं सम्राट विनम्र रहे, प्रजा की सेवा करने के लिए कटिबद्ध रहे। यह सब करने के लिए अपने को जल-धारा की तरह सबसे नीचे रखे। यही ताओ के, विश्व-नियम के अनुसार मंत्रणा है, उपदेश है।

पुराने लोग ताओ को इतना मूल्य क्यों देते थे? क्या इसके बारे में ऐसा नहीं कहा गया था, जो मांगेगा उसे मिलेगा, जिसने पाप किया उसे क्षमा

मिलेगी? अतएव ताओ इस पृथ्वी पर सबसे उत्कृष्ट है। ताओ का, विश्व-नियम का यही संकेत है कि जीवन में सुख चाहो, तो निर्मान और निष्काम रहो। पुराने लोग इसीलिए ताओ का महत्त्व मानते थे, क्योंकि वे सत्य के निकट थे। **जो मांगेगा उसे मिलेगा** का अभिप्राय है कि जो ताओ से अपने को जोड़ना चाहेगा उसे ताओ का संरक्षण मिलेगा। जो विश्व-नियम से चलने का प्रयास करेगा और निर्मान तथा निष्काम होकर जीयेगा उसे सुख-शान्ति मिलेगी। **जिसने पाप किया उसे क्षमा मिलेगी।** यह मानवता है कि गिरे हुए को उठाया जाये। जिससे पाप-कर्म हुआ है, वह यदि विनम्र होकर अपना उद्धार चाहे तो उसे सुधार का अवसर दिया जाना चाहिए।

अतएव ताओ इस पृथ्वी पर सबसे उत्कृष्ट है। इसलिए विश्व-नियम संसार में सर्वोच्च है। उसको समझना चाहिए और उसके अनुसार चलना चाहिए। यह ताओ है, विश्व-नियम है कि लड़नेवाला हारता है, और हार मानकर चलनेवाला जीतता है। अपनी अहंता-ममताजनित मान्यताओं को बचाने वाला अपने स्वत्व को खोता है और मान्यताओं को खो देने वाला अपने को बचा लेता है। अपने मायिक नाम-रूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा वाला स्वयं को खोता है और नाम-रूप का मोह मिटा देने वाला स्वयं के शाश्वत जीवन को उपलब्ध होता है।

63. क्रिया-शून्यता और स्वादहीन स्वाद

1. *Whosoever practices non-action,*
   occupies himself with not being occupied,
   finds taste in what does not taste:
   he sees the great in the small and the much in the little.
   He repays animosity with Life.

2. *Plan what is difficult while it is still easy!*
   Do the great thing while it is still small!
   Everything heavy on earth begins as something light.
   Everything great on earth begins as something small.
   Therefore: if the Man of Calling never does anything great
   then he can complete his great deeds.

3. *Whosoever makes promises lightly,*
   surely he will not keep them.
   He who takes many things lightly,
   surely he will have much difficulty.
   Therefore: if the Man of Calling gives consideration to difficulties
   he shall never have difficulties.

अनुवाद

1. *जो क्रिया-शून्यता का अभ्यास करता है,*
   वह अपने को खाली करने में लगा रहता है।
   वह उसमें स्वाद लेता है जो स्वादरहित है।
   वह छोटा में बड़ा को,
   अल्प में अधिक को देखता है।
   वह वैर के प्रतिफल में जीवन देता है।

2. *संकट से तभी निपटा जा सकता है,*
   जब वह सरल हो।

वह उस महानता को उपलब्ध होता है,
जिसका अभी प्रारंभ ही है।
प्रत्येक भारी चीज अपने प्रारंभ में हलकी होती है।
प्रत्येक महानता अपने प्रारंभ में छोटी दिखती है।
अतएव,
जब संत कुछ भी महान नहीं करते,
तब वे अपने महान कार्यों को पूर्ण करते हैं।

3. जो प्रतिज्ञा करने में सरल है,
निश्चय ही वह उन्हें नहीं निभायेगा।
जो सब कुछ सरल समझता है,
निश्चय ही उसे बहुत कठिनाई होगी।
अतएव,
संत जब कठिनाइयों पर विचार करते हैं,
फिर उन्हें कभी कठिनाई नहीं होती।

भावार्थ—1. जो साधक क्रिया-शून्य होने का अभ्यास करता है, वह सारी अहंता-ममता त्यागकर अपने मन को खाली करने में लगा रहता है। वह उसका आस्वादन करता है जो लौकिक दृष्टि से स्वाद-रहित है; वह है अंतर्मुखता। वह छोटे में बड़े को तथा थोड़े में बहुत को देखता है। वह किसी के वैर करने पर उसके फल में उसे निर्भयता देता है।

2. किसी विपत्ति से तभी निकल लेना चाहिए जब तक वह घनीभूत न हो गयी हो। सावधान मनुष्य उस महानता को उपलब्ध होता है जिसकी अभी शुरुआत है। हर भारी वस्तु अपनी शुरुआत में हलकी होती है। हर महानता अपनी शुरुआत में छोटी दिखायी देती है। इसलिए जब संत कुछ भी महान न समझकर अपने सहज स्वभाव से करते हैं, तब वे अपने महान कार्य-आत्मशांति को पूर्ण कर लेते हैं।

3. जो आदमी बड़ी सरलता से प्रतिज्ञा करता रहता है, निश्चित ही वह उसे निभा नहीं सकता। जो सब कुछ सरल समझता है और उसके भीतर की कठिनाइयों को नहीं समझ पाता, वह आगे चलकर कठिनाइयों में फंस जाता है। संत कठिनाइयों को अपने विवेक से पहले देख लेते हैं, इसलिए उनको कभी कोई कठिनाई नहीं होती।

भाष्य—जो क्रिया-शून्यता का अभ्यास करता है, वह अपने को खाली करने में लगा रहता है। क्रिया-शून्यता का अर्थ कर्तव्य-कर्मों का त्यागकर तथा हाथ-पैर बटोरकर बैठ जाना नहीं है। इसका तात्पर्य है संकल्प-शून्य होना। यह

समाधिकाल की बात है। जो सांसारिक अहंता-ममता को मन में भरे रहेगा वह क्रिया-शून्य समाधि में नहीं जा सकता। इसलिए ग्रंथकार कहते हैं कि जिसे क्रिया-शून्यता एवं निर्विकल्प समाधि का अभ्यास करने की चेष्टा है, वह अपने को खाली करने में लगा रहता है। निर्विकल्प समाधि क्रिया-शून्यता है, और इसकी सिद्धि के लिए अपने को खाली करना आवश्यक है। मन को अहंकार-शून्य, इच्छा-शून्य कर देना अपने को खाली करना है। नकली मैं को मिटाकर ही असली मैं में स्थिति होती है। शारीरिक नाम-रूप में तादात्म्य नकली मैं है। इसके मिट जाने पर स्वरूपस्थिति होती है।

वह उसमें स्वाद लेता है जो स्वाद-रहित है। संसारी आदमी के लिए अंतर्मुखता स्वादहीन है। वह चंचलता में स्वाद मानता है, रस समझता है, अंतर्मुखता से घबराता है। परंतु क्रिया-शून्य एवं निर्विकल्प समाधि का अभ्यासी अंतर्मुखता के असीम स्वाद को जानता है। ग्रंथकार व्यंग्य के लहजे में कहते हैं, 'वह स्वादरहित का स्वाद लेता है।' वस्तुतः अंतर्मुखता एवं मन की पूर्ण शांति ही परम स्वादीला है। यह अतींद्रिय सुख है, इंद्रियों तथा उनके विषयों से परे का स्थिर आनंद है।

वह छोटा में बड़ा को, अल्प में अधिक को देखता है। कोई उम्र में, विद्या में, पद में, लौकिक कुल-गोत्र में, संपत्ति और प्रतिष्ठा में छोटा दिखता है; परंतु विवेकवान उसमें बड़ा को देखता है। आत्मा सर्वोच्च है और वह उसमें भी है। वह भी अपना अपमान और अवमूल्यन नहीं चाहता, जैसे मैं इन्हें नहीं चाहता हूं। अतएव स्वभाव से भी उसमें महानता के बीज अन्य महान माने जाने वाले लोगों की तरह हैं। अतएव विवेकवान छोटा दिखने वालों में महान देखता है।

वह अल्प में अधिक को देखता है। उसके हृदय में संतोष का सागर होता है, अतएव वह देहनिर्वाह में मिले हुए पदार्थों को, जो थोड़े हैं, बहुत समझता है। वह जो कुछ करता है और उसमें जो कुछ उपलब्ध होता है, उसे वह बहुत अधिक लगता है। असंतोष मन की तृष्णा का फल है। उसके पूरा मिट जाने पर सारी उपलब्धियां अधिक लगती हैं। उसी का जीवन सदैव आनंदित रहता है जो हर हालत में आत्मसंतुष्ट है, जिसे सब समय तृप्ति-ही-तृप्ति है। जो अल्प में अधिक देखे वह सच्चा मनुष्य है, देव है, भगवान है, और चाहे जिस बड़े भाव वाले शब्द से उसे कह लें।

वह वैर के प्रतिफल में जीवन देता है। जब विवेकवान से कोई वैर करता है, उसके साथ दुर्वचन एवं दुर्व्यवहार करता है, तब उसके बदले में वह उसे जीवन देता है, निर्भयता देता है। उस महापुरुष के जीवन में केवल अच्छाइयां भरी हैं, इसलिए उससे किसी का बुरा हो ही नहीं सकता। किसी के अच्छा या बुरा कहने से कोई अच्छा या बुरा नहीं होता, अपितु जो उसके भीतर है वही

उसकी वास्तविकता है। जो जीवन से अच्छा है, जिसके जीवन में केवल अच्छाइयां भरी हैं, उसके द्वारा बुराइयां कहां निकल सकती हैं? अतएव वह अपने विरोधी को जीवन प्रदान करता है, निर्भयता का दान करता है। पूर्ण संयमित व्यक्ति पूर्ण अहिंसक होता है और पूर्ण अहिंसक व्यक्ति से उसका विरोधी भी आश्वस्त होता है कि यह मनुष्य किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता, तो मेरे साथ भी दुर्व्यवहार नहीं कर सकता।

संकट से तभी निपटा जा सकता है जब वह सरल हो। संकट एवं विपत्ति का जो कारण है उसी को परखना चाहिए और उसे मिटाने का प्रयास करना चाहिए। आरंभ में ही मिटाना सरल है। यदि लापरवाही की गयी और उसके फल में विपत्ति गहरा गयी तो उसका मिटाना सहज नहीं है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं, "कुसंग की मार से लोग मरते हैं जैसे कंटीले बेर-पेड़ के साथ में केले के पत्ते। केले के पत्ते हवा से हिलते हैं और बेर की कांटेदार डालियां उन्हें फाड़ती हैं। हे अपने कर्मों का विधाता मनुष्य! तू कुसंग का त्याग कर। केला तभी सावधान नहीं हुआ जब उसके पास बेर के कंटीले पेड़ पैदा हुए थे। अब जब उसके कांटे केले को घेर लिये, तो रोने से क्या होगा? मनुष्य को कुसंग से पहले ही सावधान हो जाना चाहिए। जब वह कुसंग में पूरा फंसकर उलझ जायेगा, तब उसके रोने से क्या होगा—

मारी मरे कुसंग की, केरा साथे बेर।
वै हालैं वै चींधरें, बिधिना संग निबेर॥
केरा तबहिं न चेतिया, जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया, जब काँटन लीन्हा घेर॥

(बीजक, साखी 242-243)

वह उस महानता को उपलब्ध होता है, जिसका अभी प्रारंभ ही है। जो मनुष्य हर पतन के कारण को समझ लेता है और उसे आरंभ में ही मिटा देता है, वह अपने जीवन में दिनोदिन महान होता जाता है। यद्यपि उसकी महानता का यह आरंभ है, परंतु यदि वह इसी तरह अपने जीवन में सावधान रहकर कुसंग का त्याग करता रहा, तो वह जीवनपर्यंत संकट से मुक्त रहेगा और सच्ची और स्थिर महानता को प्राप्त करेगा। महानता की प्राप्ति है दुख-रहित, चिंता-रहित, उद्वेग-शून्य परमशांति की प्राप्ति।

प्रत्येक भारी चीज अपने प्रारंभ में हलकी दिखती है। प्रत्येक महानता अपने प्रारंभ में छोटी दिखती है। एक बरगद का पौधा प्रारंभ में छोटा-सा होता है, किंतु कुछ वर्षों में वह विशाल वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार एक छोटा साधक जो सब तरफ से सावधान होकर अपनी पवित्र रहनी में चलता है, वह कुछ दिनों में महान संत हो जाता है। संत होने का तात्पर्य बाहर से महिमा-

मंडित होना नहीं है, अपितु भीतर से सर्वथा दुख-रहित होना है। मानसिक दुख का नरक सबके भीतर है। जो इससे सर्वथा मुक्त हो गया, वह महान हो गया।

अतएव जब संत कुछ भी महान नहीं करते, तब वे अपने महान कार्यों को पूर्ण करते हैं। संत यह नहीं मानते कि मैं कोई महान काम कर रहा हूं। वे तो इस सच्चाई को देखते हैं कि मैं अब तक मानसिक-विकारों के नरक में डूबा हुआ निरंतर दुख में तप रहा था। अब उससे सर्वथा मुक्त होकर शाश्वत शांति में रहना है। इस काम को महिमा-मंडित करके किसी को आंखें दिखाने की बात नहीं है। यह तो अपने मल को धोकर स्वच्छ रहना भर है। यदि हमने स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहन लिया तो इसमें हमारी महानता क्या है? इसी प्रकार मैं दुख में डूबा था, उससे मैंने अपने को पूरा छुड़ा लिया। इसमें हमारी महानता नहीं है, अपितु सच्चा स्वार्थ है। अतएव संत जब कुछ महान नहीं करते, तब वे अपने महान कार्यों को पूर्ण करते हैं।

जो प्रतिज्ञा करने में सरल है, निश्चय ही वह उन्हें नहीं निभायेगा। एक सज्जन सिगरेट पीते थे। उनसे एक संत ने कहा, आप सिगरेट पीना छोड़ दें। उन्होंने कहा, **मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि सिगरेट नहीं पीऊंगा। इसमें क्या बड़ी बात है। मैंने बीसियों बार सिगरेट न पीने की प्रतिज्ञा कर ली है।** जो सरलता से प्रतिज्ञा करता रहता है वह उसे निभा नहीं सकता। अतएव कोई बुरी बात छोड़ने तथा अच्छी बात ग्रहण करने के लिए बहुत सोच-विचार कर गंभीरता से प्रतिज्ञा करना चाहिए।

जो सब कुछ सरल समझता है, निश्चय ही उसे बहुत कठिनाई होगी। जो कुसंग को, गलत आचरण को, योग्यता से अधिक काम-धंधे को, या इसी तरह सब कुछ सरल समझकर अपने हाथ-पैर सब तरफ फैलाता जाता है, वह कठिनाइयों में फंस जाता है। इसलिए इस उलझन भरे संसार में अपने को बहुत सम्हाल कर रखना चाहिए। सब तरफ से सावधान रहो। सबसे सब समय अपने को बचाकर रखो।

अतएव, संत जब कठिनाइयों पर विचार करते हैं, फिर उन्हें कभी कठिनाई नहीं होती। जो अपने विवेक से आनेवाली कठिनाइयों को पहले देख लेता है, वह उनसे सावधान हो जाता है और उनका निवारण कर देता है। इसलिए उसके जीवन में कठिनाइयां नहीं आतीं। अपने जीवन की सारी उलझन और दुख के मूल में है हमारी अपनी असावधानी, प्रलोभन, अहंकार और कामना। जो इनको मन से निकाल देता है, वह सदैव विघ्न-बाधा से रहित स्वतंत्र जीवन व्यतीत करता है।

---

64. संत कामना-हीन रहने की कामना करते हैं

1. *What is still calm can easily be grasped.*
What has not yet emerged can easily be considered.
What is still fragile can easily be broken.
What is still small can easily be scattered.
One must work on what is not yet there.
One must put in order what is not yet confused.

2. *A tree trunk the size of a fathom*
grows from a blade as thin as a hair.
A tower nine stories high
is built from a small heap of earth.
A journey of a thousand miles
starts in front of your feet.
Whosoever acts spoils it.
Whosoever keeps loses it.

3. *Thus also is the Man of Calling:*
He does not act, thus he spoils nothing.
He does not keep thus he loses nothing.
People go after their affairs,
and always when they have nearly finished
they spoil it.
Pay attention to the end as much as to the beginning:
then nothing will be spoiled.

4. *Thus also is the Man of Calling :*
He desires desirelessness.
He does not desire goods that are hard to attain.
He learns non-learning.
He turns back to that which the multitude passes by.
Thereby he furthers the natural course of things
and does not dare to act.

अनुवाद

1. *जो अत्यंत शांत है,*
उस पर सरलता से नियंत्रण हो सकता है।
जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ,
उसका निवारण आसान है।
जो अभी कमजोर है,
उसे आसानी से तोड़ा जा सकता है।
जो अभी लघु है,
उसे सरलता से नष्ट किया जा सकता है।
किसी चीज के अस्तित्व में आने से
पहले ही उससे निपट लो।
परिपक्व होने से पहले ही उपद्रव रोक लो।

2. *एक वृक्ष का मोटा तना,*
बाल जैसी पतली घास से बढ़ता है।
नौ मंजिला ऊंचे भवन का निर्माण,
मिट्टी के छोटे ढेर से प्रारंभ होता है।
हजारों मील की लंबी यात्रा का प्रारंभ,
आपके पांवों के पास से होता है।
जो करता है, वह बिगाड़ता है।
जो रखता है, वह खोता है।

3. *संत की रहनी इस प्रकार होती है,*
वे करते नहीं, अतएव उनसे कुछ बिगड़ता नहीं।
वे पकड़कर रखते नहीं, अतएव उनसे कुछ खोता नहीं।
लोग अपने काम में लगते हैं,
और सदैव ही जब काम पूरा होने के करीब आता है,
वे उसे बिगाड़ लेते हैं।
अंत के प्रति वैसे ही सावधान रहो,
जैसे प्रारंभ के प्रति थे,
तब कुछ नहीं बिगड़ेगा।

4. *संत की रहनी इस प्रकार होती है,*
वे कामना-रहित होने की कामना रखते हैं।
वे उन वस्तुओं की प्राप्ति की चाहना नहीं रखते,
जिन्हें प्राप्त करने में कठिनाई हो।

वे अनसीखे को सीखते हैं।
वे उस ओर मुड़ते हैं,
बहुतेरे जिसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ जाते हैं।
इस प्रकार,
वे वस्तुओं के प्राकृतिक क्रम में सहयोगी होते हैं,
उसमें हस्तक्षेप नहीं करते।

भावार्थ—1. अत्यंत शांत वातावरण पर नियंत्रण करना सरल है। जो समस्या अभी तक नहीं आयी है, उससे बचे रहना सहज है। जो अभी दुर्बल है, उसे सरलता से तोड़ा जा सकता है। जो समस्या अभी छोटी है उसे सरलता से समाप्त किया जा सकता है। किसी समस्या के आने से पहले उसे मिटा दो। उपद्रव बढ़ने से पहले उसे रोक दो।

2. एक विशाल मोटा वृक्ष बाल की तरह पतले अंकुर से बढ़ता है। नौ मंजिला भवन एक मुट्ठी मिट्टी से बनना आरंभ होता है। सहस्रों किलोमीटर की लंबी यात्रा आपके पैरों के पास से शुरू होती है। करने वाला बिगाड़ता है और पकड़कर रखनेवाला खोता है।

3. संत की रहनी इस तरह होती है—वे करते नहीं, अतः उनसे कुछ बिगड़ता नहीं। वे कुछ पकड़कर रखते नहीं, इसलिए उनका कुछ खोता नहीं। लोग काम शुरू करते हैं, परंतु जब उसके पूरा होने का समय आता है तब वे उसे बिगाड़ लेते हैं। समाप्ति के प्रति उसी तरह सावधान रहना चाहिए जैसे शुरू करने के समय थे, फिर कुछ नहीं बिगड़ेगा।

4. संत इस प्रकार आचरण करते हैं, वे निष्काम रहने की कामना रखते हैं। वे ऐसी वस्तुओं को पाने की इच्छा नहीं रखते जिसके मिलने में कठिनता हो। वे उसको सीखते हैं जिसको आज तक नहीं सीखा गया है। वे उस तरफ मुड़ते हैं, जिस तरफ से लोग लापरवाह होकर आगे बढ़ जाते हैं। वे वस्तुओं के प्राकृतिक प्रवाह में सहयोगी होते हैं। उसमें बाधा डालने का प्रयास नहीं करते।

भाष्य—जो अत्यंत शांत है, उस पर सरलता से नियंत्रण हो सकता है। बिलकुल शांत वातावरण पर नियंत्रण करना सहज है। अतएव जब सब ठीकठाक है, तभी से सावधान रहो। लोगों के मन में व्यवहार को लेकर धीरे-धीरे मनोविकार आते हैं। उनको मिटाते रहने के लिए यही उपाय है कि स्वयं निर्विकार और सरल रहे तथा दूसरों को इसकी सीख देता रहे।

जो अभी तक प्रकट नहीं हुआ, उसका निवारण आसान है। जो अभी कमजोर है, उसे आसानी से तोड़ा जा सकता है। जो अभी लघु है, उसे सरलता से नष्ट किया जा सकता है। किसी चीज के अस्तित्व में आने से पहले ही उससे निपट लो। परिपक्व होने से पहले ही उपद्रव रोक लो। ऊपर एक ही

विषय पर बारंबार पुनरुक्ति की गयी है। सार है कि उपद्रव आने के पहले ही उसका निवारण कर लो। आने वाले सारे उपद्रवों को रोकने का एक ही उपाय है, निर्मान और निष्काम हो जाना, अपना मुंह बंद कर लेना, जब बोलना तब मीठे वचन हों। मालिक बनने की इच्छा न रखना, सबसे पीछे और नीचे रहकर सेवा करना, अपना मन बालक के समान सरल रखना। सेवा करना, लेकिन अपने लिए कुछ न चाहना, ये सारे उपद्रवों को रोकने के सरल साधन हैं।

एक वृक्ष का मोटा तना बाल जैसी पतली घास से बढ़ता है। नौ मंजिले ऊंचे भवन का निर्माण मिट्टी के छोटे ढेर से आरंभ होता है। हजारों मील की यात्रा का प्रारंभ आपके पांवों के पास से होता है। उपर्युक्त सारे उदाहरण एक ही बात पर बल देने के लिए हैं कि उन्नति का आरंभ छोटे बिंदु से होता है। यदि कार्य करने का क्रम सात्विक है, तो वह अच्छा फल देगा।

जो करता है, वह बिगाड़ता है। यहां करने का अर्थ है गंदे स्वार्थ को लेकर तथा अहंकार-कामना करके कुछ करना। यदि ऐसा है, तो निश्चित है कि वह बिगड़ेगा।

ऐसा देखा गया है कि कुछ चालाक लोग जो आचरण से शिथिल और लौकिक स्वार्थ-पूर्ति की कामना वाले थे, गुरु के मरते समय उन्हें फुसला-बहकाकर अपने कब्जे में कर लिये। गुरु चले गये और वे मठाधीश तथा गुरु बन गये। उनकी प्रकृति वाले लोग उनके सहयोगी हो गये। इसलिए अच्छे लोग हट गये। तत्काल भोले लोगों को लगा कि उन्नति हो रही है, परंतु कुछ वर्षों में स्याही पुत गयी। अहंकार, कामना, गंदे स्वार्थ, लोभ आदि मन में रखकर जो कुछ किया जायेगा, वह अंत में बिगड़ना ही है। अतएव ग्रंथकार का यह कहना **जो करता है, वह बिगाड़ता है** पहेली जैसी बात है, परंतु उसका मर्म यही है कि जो गंदी कामनाएं रखकर काम करेगा वह उसको बिगाड़ लेगा। वह स्वयं बिगड़ा ही है तो अपने काम को भी बिगाड़ेगा ही। अच्छा या बुरा जो कुछ किया जाता है, उसका फल तत्काल कम दिखता है। कुछ दिनों के बाद सबके सामने आ जाता है।

जो रखता है, वह खोता है। जो पकड़कर रखता है, लोभ करके संग्रह में बुद्धि रखता है, वह खोता है। वह पहले अपने को खोता है, और पीछे उस संग्रह को भी खोना ही है। माया की सारी चीजें आने-जाने वाली हैं। उनके प्रति लोभ रखना, उन्हें बटोरकर बनाये रखने की कामना अपने को खोना है; और सारा संग्रह अंत में खो जाना ही है। इसलिए शांति-इच्छुक कुछ नहीं पकड़ता। 'आवा गवा खर्च, साधु का मामला फर्च।'' याद रखें, संग्रह खर्च के लिए होना चाहिए। संग्रह के लिए संग्रह पाप है।

संत की रहनी इस प्रकार होती है, वे करते नहीं, अतएव उनसे कुछ बिगड़ता नहीं। वे पकड़कर रखते नहीं, अतएव उनसे कुछ खोता नहीं। संत भी करते हैं, परंतु यहां जो कहा गया, 'वे करते नहीं।' इसका अर्थ है कि वे अहंकार-कामना लेकर कुछ नहीं करते। वे जो कुछ करते हैं, अहंकार-कामना-शून्य होकर करते हैं। इसलिए उनसे कुछ बिगड़ता नहीं। **वे पकड़कर रखते नहीं, अतएव उनसे कुछ खोता नहीं।** पकड़ने वालों को खोने का गम होता है। जो पकड़ता ही नहीं, उसे खोने का दुख नहीं होता। संसार का सारा संग्रह नष्ट होता है। जब संग्रह का मूल शरीर ही नष्ट हो जाता है, तब अपने पास क्या रहेगा? इसलिए संत ऐसे ध्यान में जाते हैं जहां भीतर पूरा खाली हो जाता है। जहां सोचना भी नहीं। भीतर पूरा प्रपंच-शून्य, शांत स्व-सत्ता मात्र शेष। यही शाश्वत जीवन में प्रवेश है। शरीर में रहते-रहते अ-शरीरी भाव में जीना जीवन्मुक्ति है। यही इस भौतिक जीवन में आने का फल है।

लोग अपने काम में लगते हैं, और सदैव ही जब काम पूरा होने के करीब आता है, वे उसे बिगाड़ लेते हैं। कुछ लोग घर-गृहस्थी का त्यागकर संत-गुरु की शरण में चले जाते हैं। उस समय उनका मन निष्छल और निर्मल रहता है। वे उत्साह से सेवा, स्वाध्याय और साधना करते हैं। कुछ वर्षों में संत-समाज एवं मठ के व्यवहार में उनको अहंता-ममता हो जाती है। उसके बाद राग-द्वेष पालने लगते हैं और उनका मन पूर्ण निर्मल नहीं रह जाता। अतएव वे अपने अंत को बिगाड़ लेते हैं। वे यह भूल ही जाते हैं कि हम क्या करने के लिए आये हैं।

जो साधक सावधान होते हैं, वे गृह-त्याग के बाद दिनोंदिन अपने मन को निर्मल करते जाते हैं। वे अपने लक्ष्य को सदैव सामने रखते हैं। इसलिए उनकी उत्तरोत्तर आध्यात्मिक उन्नति होती जाती है। इसीलिए ग्रंथकार कहते हैं—

अंत के प्रति वैसे ही सावधान रहो, जैसे प्रारंभ के प्रति थे, तब कुछ नहीं बिगड़ेगा। जैसे शुरू में उत्साह और निर्मल मन से साधना में लगा गया था, यदि वैसे आगे-आगे भी सावधानी से साधना में लगा रहे, तो कोई हानि होने वाली नहीं है, अपितु अपने अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति होगी। सद्‌गुरु कबीर ने भी कहा है, ''जैसे शुरू में लगन लगी है वैसे आखिरी तक लगी रहे तो निश्चित ही सफलता होगी। धीरे-धीरे कौड़ी-कौड़ी जोड़कर लाख-करोड़ की संपत्ति इकट्ठी होती है—

जैसी लागी ओर की, वैसे निबहै छोर।
कौड़ी-कौड़ी जोरि के, पूँजी लक्ष-करोर॥

(बीजक, साखी 209)

संत की रहनी इस प्रकार होती है, वे कामना-रहित होने की कामना रखते हैं। संत की एक ही कामना रहती है कि मैं सारी कामनाओं से सर्वदा रहित रहूं। पहले मोक्ष-प्राप्ति की कामना होती है, परंतु जब साधक साधना की परिपक्वता तक पहुंच जाता है, तब उसकी सारी कामनाएं छूट जाती हैं। उस समय उसे मोक्ष की भी कामना नहीं रहती; क्योंकि सारी कामनाओं से निवृत्ति हो जाने के कारण वह निरंतर मुक्त ही होता है। दिल्ली पहुंचने की कामना तब तक होती है जब तक दिल्ली न पहुंचे; और जब दिल्ली पहुंच गये, तब दिल्ली पहुंचने की कामना शून्य हो जाती है। इसी प्रकार जब तक मोक्ष में नहीं पहुंचा गया है, तब तक मोक्ष-प्राप्ति की कामना होती है; किंतु जब सारी कामनाएं समाप्त हो गयीं, तब यही मोक्ष है। अतएव मोक्ष की कामना पूरी हो गयी। अब पुन: उसकी कामना रहने का प्रश्न ही नहीं। सारी कामनाओं से निवृत्ति ही मोक्ष है।

वे उन वस्तुओं की प्राप्ति की कामना नहीं रखते, जिन्हें प्राप्त करने में कठिनाई हो। संत वह है जो सहज जीवन जीता है। जो सहजता से मिले, वह उसी का उपयोग करता है। कठिनता से मिलने वाली वस्तुओं की वह इच्छा ही नहीं करता। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं—

सहज मिले सो दूध बराबर, मांगे मिले सो पानी।
कहैं कबीर वह रक्त बराबर, जामें ऐंचातानी॥

वे अनसीखे को सीखते हैं। आज तक हमने क्या सीखा है? अनुकूल प्राणी-पदार्थों में चिपकना, संसार के भोगों, पदों, प्रतिष्ठाओं की कामना करना, पांचों विषयों में आकर्षित होकर उनको पाने और भोगने के लिए उनके पीछे दौड़ना, यही सब हम सीखते और करते रहे। अब क्या सीखना और करना है? जो आज तक अनसीखा और अनकिया है; वह है, भोगों से हटना, पद-प्रतिष्ठा न चाहना, अंतर्मुख हो जाना, इच्छा-शून्य तथा संकल्प-शून्य होकर स्वयं शेष रह जाना।

आज तक हम कलह करते रहे, अब शांत रहना है, विवाद करते रहे, अब मौन रहना है, बदला लेने की भावना में रहे, अब क्षमा करना है, विषय-चिंतन करते रहे, अब चित्त निर्मल एवं शून्य करना है, देहाभिमान में रहे, अब आत्माराम होकर रहना है।

वे उस ओर मुड़ते हैं, बहुतेरे जिसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ जाते हैं। संत बाहर से लौटकर भीतर मुड़ते हैं। वे अंतर्मुख हो जाते हैं। सुषुप्ति, देहांत और विदेह-मोक्ष में जैसे प्रपंच-शून्य स्थिति रहती है, वैसे संत देह में रहते हुए निर्विकल्प-समाधि में, प्रपंच-शून्य स्थिति में रहते हैं। न देखना, न सुनना, न जानना, यह ज्ञान-शून्य स्थिति महा ज्ञान-दशा है। इस तरफ प्राय: लोग नहीं

आते। संत इसी तरफ मुड़कर पीड़ा-मुक्त हो जाते हैं। यही कबीर साहेब का 'जीवत-मृतक' होना है। मौन, शांत, निर्विवाद, कलह-शून्य, जगत-जलन से परे परमानंद।

इस प्रकार, वे वस्तुओं के प्राकृतिक क्रम में सहयोगी होते हैं, उसमें हस्तक्षेप नहीं करते। सारी निर्मित वस्तुएं जो दृश्यमान हैं, वे क्षीण होकर अपनी मूल प्रकृति में जाती हैं। अपना माना हुआ शरीर भी उसी तरफ गतिशील है। यहां तक कि सारा जड़-दृश्य मूल प्रकृति में लौट रहा है। संत इसमें सहयोग करते हैं। उन्हें ऐसा होने देते हैं। शरीरादि दृश्यों को स्थिर और अपने पास रखने की कामना नहीं करते। किसी वस्तु का मोह न करना, उसे पकड़कर रखने की इच्छा न रखना प्राकृतिक क्रम का सहयोग करना है। छुटने और मिटने वाली वस्तुओं को स्थिर रखने की इच्छा रखना अज्ञान है। यही प्राकृतिक क्रम में हस्तक्षेप करने का बालहठ है। मिटने और छुटने वाली वस्तुओं से पूर्ण निस्पृह हो जाना प्राकृतिक क्रम में हस्तक्षेप न करना है। यही मोक्ष है।

इस अध्याय के प्रारंभ में जो कई पंक्तियों में पुनरुक्ति पूर्वक यह बात आयी है कि समस्या के लघु रूप उपस्थित होने पर ही उसे मिटा दो; इसका वर्णन संत लाओत्ज़े के समसामयिक रहने वाले महापुरुष कन्फ्यूशियस की पुस्तक में तथा उनके पहले की पुस्तक में भी आयी है। व्यावहारिक और आध्यात्मिक जीवन में सुख से कालक्षेप करने के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है।

65. सूखा ज्ञान नहीं, त्याग कल्याणकारी है

1. *Those of old who were competent*
   in ruling according to DAO
   did not do it by enlightening the people
   but by keeping the people unknowing.
   The difficulty in leading the people
   comes from their knowing too much.

2. *Therefore: whosoever leads the state through knowledge*
   is the robber of the state.
   Whosoever does not lead the state through knowledge
   is the good fortune of the state.
   Whosoever knows these two things has an ideal.
   Always to know this ideal is hidden Life.
   Hidden Life is deep, far-reaching,
   different from all things,
   but in the end it works the great success.

अनुवाद

1. *पुराने समय में जो लोग ताओ के अनुसार*
   शासन करने में निपुण थे,
   वे लोगों को ज्ञानी बनाकर नहीं,
   अपितु, लोगों को अ-जानकार रखकर ही ऐसा कर सके थे।
   लोगों के बहुत जानकार हो जाने पर,
   उनका नेतृत्व करना कठिन हो जाता है।

2. *अतएव, जो राष्ट्र को ज्ञान से चलाना चाहते हैं,*
   वे राष्ट्र के लुटेरे हैं।
   जो राष्ट्र को ज्ञान से नहीं चलाते,
   राष्ट्र के लिए सौभाग्य हैं।

जो इन दोनों बातों को जानता है,
उसका एक आदर्श होता है।
इस आदर्श से सदैव सुपरिचित होना ही गुप्त जीवन है।
गुप्त जीवन है गहन, व्यापक, सबसे सर्वथा भिन्न,
किंतु, अंतत: यह पूरी सफलता से काम करता है।

भावार्थ—1. पहले समय में जो विश्व-नियम के अनुसार शासन करने में प्रवीण थे, वे लोगों को ज्ञान की शिक्षा देकर नहीं, अपितु उन्हें ज्ञान से दूर रखकर ऐसा कर सके थे। जब लोग बहुत जानकार हो जाते हैं, तब उन पर नियंत्रण करना कठिन हो जाता है।

2. इसलिए जो लोग ज्ञान के बल पर राष्ट्र का संचालन और व्यवस्था करना चाहते हैं, वे राष्ट्र को लूटने वाले हैं। जो राष्ट्र को ज्ञान से चलाने का आग्रह छोड़कर सरलता से चलाते हैं, वे राष्ट्र के लिए कल्याणकारी हैं। जो मनुष्य उक्त दोनों बातों को जानता है, उसका अच्छा आदर्श होता है। इस आदर्श को सदा ध्यान में रखना गुप्त जीवन है। गुप्त जीवन गहरा, व्यापक, सबसे सर्वथा भिन्न होता है, परंतु यह पूरी सफलता से अपना उद्देश्य पूरा करता है।

भाष्य—पुराने समय में जो लोग ताओ के अनुसार शासन करने में निपुण थे, वे लोगों को ज्ञानी बनाकर नहीं, अपितु लोगों को अजानकार रखकर ही ऐसा कर सके थे। पहले समय में ऐसे शासक थे जो विश्व-नियम को पहचानते थे। अतएव वे जानते थे कि निर्मान और निष्काम होकर ही जनता का भला किया जा सकता है। वे अधिकारियों को ज्ञानी बनाकर नहीं, अपितु चालाकी, चतुरता से दूर रखकर उन्हें निर्मान और निष्काम होने की सीख देते थे। बहुत जानकार मनुष्य ज्यादा चालाक हो जाता है और फलत: घमंडी और ऐश्वर्य-भोग की कामना वाला हो जाता है। इसलिए—

लोगों के बहुत जानकार हो जाने पर, उनका नेतृत्व करना कठिन हो जाता है। नेता और अधिकारी बहुत जानकार हो गये जो केवल बुद्धि का विषय है, किंतु जिसका आचरण करना त्याग के बिना कठिन होता है वह निर्मानता और निष्कामता जीवन में नहीं आयी, तो उनको लेकर चलना कठिन हो जाता है।

अतएव, जो राष्ट्र को ज्ञान से चलाना चाहते हैं, वे राष्ट्र के लुटेरे हैं। नेता और अधिकारियों में लौकिक ज्ञान बहुत बढ़ गया, जो पढ़-लिखकर बड़ी सरलता से हो जाता है; किंतु निर्मान और निष्काम होना बड़े त्याग का फल है, यह जीवन में नहीं आया, तो वे लौकिक ज्ञान के बल पर अपने अहंकार और कामना के पोषण के लिए देश को लूटते हैं। वे चालाकी से तो जनता को लूटते

ही हैं, अपितु ऐसे-ऐसे विधान बना लेते हैं जिसके बल से उनके वर्ग के पास ही अधिक अधिकार और धन इकट्ठा होता है।

जो राष्ट्र को ज्ञान से नहीं चलाना चाहते, वे राष्ट्र के लिए सौभाग्य हैं। संत लाओत्ज़े के अधिक कथन पहेलियों में हैं, इसलिए उनमें गूढ़ता है। **जो राष्ट्र को ज्ञान से चलाना चाहते हैं वे राष्ट्र के लुटेरे हैं।** यह वचन चौंकाने वाला है। **जो राष्ट्र को ज्ञान से नहीं चलाना चाहते वे राष्ट्र के लिए सौभाग्य हैं।** यह भी चौंकाने वाला वचन है। परंतु ग्रंथकार के मर्म तक पहुंच जाने पर इन वचनों को समझना बहुत सरल हो जाता है।

संत लाओत्ज़े स्वयं पहले सम्राट के अभिलेखागार के बड़े अधिकारी थे। उन्होंने राजकाज में काम करने वाले पढ़े-लिखे लोगों की चालाकियां देखी थीं। वे ज्ञान के विरोधी नहीं हैं, किंतु जमीन की बात करते हैं। मनुष्य निर्मान और निष्काम रहे, तो सब ज्ञान आ जायेगा। अपना और दूसरे का हित घमंड-रहित और कामना-शून्य होकर रहने से ही होगा। **जो राष्ट्र को ज्ञान से नहीं चलाना चाहते, वे राष्ट्र के लिए सौभाग्य हैं।** इसका अर्थ यही है कि ताओ के अनुसार शासन करने वाले केवल ज्ञान के बल पर शासन नहीं करते, अपितु त्याग के बल पर करते हैं। अहंकार और व्यक्तिगत भोग-ऐश्वर्य की कामना का त्याग रखने वाले शासक ही देश के लिए वरदान होते हैं।

जो इन दोनों बातों को जानता है, उसका एक आदर्श होता है। इस आदर्श से सदैव सुपरिचित होना ही गुप्त जीवन है। ज्ञान से आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण नहीं किया जा सकता, अपितु त्याग से किया जा सकता है। इन दोनों बातों को जो सब समय ध्यान में रखता है, वह ज्ञान सीखने पर जोर नहीं देता, अपितु त्याग पर जोर देता है। त्याग से आवश्यकतानुसार ज्ञान अपने आप आ जाता है। अहंकार और कामना से सारा पाप होता है। इनके त्याग से अपना जीवन आनंदमय होता है और दूसरों की अच्छी सेवा की जा सकती है। ग्रंथकार कहते हैं कि सूखे ज्ञान का थोथापन और त्याग का महत्त्व जो समझता है, वह निरे ज्ञान से हटकर अहंकार-कामना शून्य जीवन जीता है, इसलिए उसका उच्च आदर्श होता है। इस आदर्श से सदैव सुपरिचित होना, इस त्याग के आदर्श का सदैव ध्यान रखना गुप्त जीवन को समझना है।

ताओ अर्थात विश्व-नियम गुप्त है। वह अदृश्य रूप में छिपा हुआ काम करता है। कुछ दिनों में उसका परिणाम सामने आता है। अहंकार तथा कामनापूर्वक केवल जानकारी के बल पर किया जाने वाला काम तत्काल उन्नतिप्रद लगता है, परंतु कुछ दिनों में उसका भयंकर परिणाम सामने आता है। इसी प्रकार अहंकार-कामना त्यागकर किया जाने वाला काम तत्काल फीका लगता है, परंतु कुछ दिनों में उसका उत्तम फल सामने आ जाता है।

ताओ की प्रेरणा है कि अहंकार और कामना से शून्य हो जाओ। यह आदर्श है, 'हिडेन लाइफ' है—गुप्त जीवन है। इसमें बाहर से कुछ वैभव नहीं दिखायी देता है, किंतु कुछ दिनों में इसका उत्तम फल सामने आता है। ग्रंथकार लिखते हैं—

गुप्त जीवन है गहन, व्यापक, सबसे सर्वथा भिन्न, किंतु, अंततः यह पूरी सफलता से काम करता है। यह जो ताओ के अनुसार चलना है, अहंकार-कामना का त्यागकर सेवा करना, गुप्त जीवन है, दिखावा-रहित जीवन है। यह गहन, गंभीर है, व्यापक है, सबसे सर्वथा पृथक है; परंतु यही अपना काम पूरी सफलता से संपन्न करता है।

ध्यान रहे, संत लाओत्ज़े ज्ञान के विरोधी नहीं हैं, किंतु उनका जोर त्याग-भावपूर्वक सेवा करने के लिए है। उनके समसामयिक महापुरुष कन्फ्यूशियस के विचार भी इस विषय में ऐसे ही हैं। रिचर्ड विल्हम इस अध्याय की टिप्पणी में केवल एक लाइन लिखते हैं जो इस प्रकार है—

'With regard to educating the people, Lao-tze and Confucius are quite in agreement.' अर्थात लोगों की शिक्षा के विषय में लाओत्ज़े और कन्फ्यूशियस की समान स्वीकृति है।

66. निष्कामता, निर्मानता और वासना-हीन मौन जीवन की ऊंचाई है

1. *Rivers and seas are the kings of the streams*
   because they know how to keep themselves below.
   Therefore are they the kings of the streams.
   Thus also is the Man of Calling:
   if he wants to stand above his people
   he puts himself below them in speaking.
   If he wants to be ahead of his people
   he stands back.

2. *Thus also:*
   He dwells in the high place
   and the people are not burdened with him.
   He stays in the prime place
   and the people are not hurt by him.
   Thus also:
   the whole world is willing to advance him
   and does not grow unwilling.
   Because he does not quarrel
   no-one in the world can quarrel with him.

अनुवाद

1. *नदियां और समुद्र स्वामी हैं जलधाराओं के,*
   क्योंकि, वे जानते हैं, कैसे अपने को नीचे रखा जाता है।
   अतएव, वे जलधाराओं के स्वामी हैं।
   संत भी इसी प्रकार होते हैं,
   जब वे अपने लोगों से ऊपर होना चाहते हैं,
   वे बोलने में अपने को उनसे पीछे रखते हैं।

जब वे अपने लोगों से आगे होना चाहते हैं,
वे पीछे खड़े होते हैं।

2. *इस प्रकार,*
वे ऊपर होते हैं और लोग उन्हें बोझ नहीं मानते।
वे विशिष्ट स्थान पर विराजते हैं,
और लोग उनसे आहत नहीं होते।
इस भांति,
सारा संसार उन्हें आगे बढ़ाने में उत्सुक है,
और उनसे कभी विमुख नहीं होता।
चूंकि उनका किसी से कलह नहीं,
संसार में उनसे कोई कलह नहीं कर सकता।

भावार्थ—1. नदियां और समुद्र जलधाराओं के मालिक हैं, क्योंकि वे नीचे हैं। इसलिए नीचे होने से ही वे मालिक हैं। संत भी इसी तरह होते हैं। जो अपने लोगों में बोलने में पीछे रहता है, वह उनमें आगे हो जाता है। वे सबसे पीछे खड़े होते हैं, इसलिए वे सबसे आगे हो जाते हैं।

2. इस तरह वे लोगों के ऊपर हो जाते हैं, परंतु उन्हें लोग बोझ नहीं मानते। वे उच्च स्थान पर विराजमान होते हैं, किंतु लोग उनसे पीड़ित नहीं होते। इसी तरह पूरी दुनिया उनको आगे रखने में उत्साह रखती है, और उनसे लोग कभी विरोध नहीं करते। क्योंकि उनका किसी से द्वंद्व नहीं रहता, संसार का कोई व्यक्ति उनसे कलह नहीं कर सकता।

भाष्य—नदियां और समुद्र स्वामी हैं जलधाराओं के क्योंकि वे जानते हैं, कैसे अपने को नीचा रखा जाता है। अतएव, वे जलधाराओं के स्वामी हैं। यहां ग्रंथकार ने काव्यात्मक भाषा में कहा है। नदियां और समुद्र जड़ हैं। वे कुछ जान नहीं सकते। तात्पर्य यह है कि नदियां और समुद्र अन्य जलधाराओं से नीचे हैं, इसलिए अन्य स्थलों का सभी जल बहकर उनमें जाता है। अतएव जो अपने को सबसे नीचे रखता है वह सबका स्वामी हो जाता है।

संत भी इसी प्रकार होते हैं। जब वे अपने लोगों से ऊपर होना चाहते हैं, वे बोलने में अपने को उनसे पीछे रखते हैं। जब वे अपने लोगों से आगे होना चाहते हैं, वे पीछे खड़े होते हैं। यहां का कथन कुछ व्यंग्यात्मक लगता है। लोग यही तो चाहते हैं कि हम अपने लोगों में ऊपर रहें, और आगे रहें। ग्रंथकार कहते हैं, तो आप कम बोलिए, कम से कम बोलिए और जब बोलिए तब सत्य और प्रिय बोलिए, और अपने को सबसे पीछे और नीचे रखिए। स्वयं को निर्मान रखना, सबसे पीछे और नीचे रखना, और मीठा बोलना, मनुष्य की ऊंचाई है।

इस प्रकार, वे ऊपर होते हैं और लोग उन्हें बोझ नहीं मानते। वे विशिष्ट स्थान पर विराजते हैं, और लोग उनसे आहत नहीं होते। जो बहुत कम बोलता है और अत्यंत विनम्रतापूर्वक तथा मीठा बोलता है, अपने को सबसे पीछे और नीचे रखता है, वह सबसे ऊपर हो जाता है। उसको लोग बोझ नहीं मानते, क्योंकि वह निष्काम और निर्मान होता है। वह इस निष्कामता और निर्मानता की विशिष्ट रहनी के आसन पर विराजता है, इसलिए उससे किसी को चोट नहीं पहुंचती।

श्री विशाल साहेब ने कहा है, **जो सबको त्यागे फिरै, तेहिको को गहि लीन।** जो सब कुछ त्याग करने में निपुण है, उसको कौन बांध सकता है और उससे किसको परेशानी होगी? उससे भी कोई परेशान है तो उसकी बेसमझी है।

इस भांति, सारा संसार उन्हें आगे बढ़ाने में उत्सुक है, और उनसे कभी विमुख नहीं होता। चूंकि उनका किसी से कलह नहीं है, संसार में उनसे कोई कलह नहीं कर सकता। जो पूर्ण निर्मान और निष्काम है उसको लोग पूजते हैं, लोग उसे आगे प्रदर्शित करने में उत्सुक रहते हैं और लोग उससे मुख नहीं फेरते, क्योंकि वह शांति-इच्छुकों के लिए प्राणप्रद शक्ति है। उसका किसी से विवाद नहीं है, इसलिए उससे कोई विवाद नहीं कर सकता।

इस पूरे अध्याय में पूर्ण जीवन्मुक्त पुरुष की पवित्र रहनी का वर्णन है। इसके प्रारंभ में नदी और समुद्र का उदाहरण दिया गया है कि वे नीचे रहकर पूरी जलधाराओं के स्वामी होते हैं। इसी प्रकार संत सबसे नीचे रहकर ऊंचे होते हैं। कहने की शैली कुछ भिन्न है कि जो ऊंचा होना चाहता है वह नीचे रहता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संत सबसे ऊपर सबके स्वामी बनने के लिए विनम्र होते हैं। वस्तुत: विनम्रता और निष्कामता ही संत की या कहना चाहिए, मनुष्य की ऊंचाई है। जिसने अपने दैहिक व्यक्तित्व के अहंकार को मार लिया, उसका आत्मिक व्यक्तित्व ऊपर उठ जाता है। देहाभिमान मिटाकर स्वरूपभाव एवं आत्मभाव में हरक्षण जीना पूर्ण दुख-निवृत्ति की स्थिति है।

67. प्रेम, संतोष और स्वामित्व-इच्छाहीनता रत्न हैं

1. *All the world says that my DAO may be great*
   but, in a manner of speaking, useless.
   Just because it is great,
   therefore it is, in a manner of speaking, useless.
   If it were useful
   it would long ago have grown small.

2. *I have three treasures*
   that I treasure and guard.
   The first is called 'love';
   the second is called 'sufficiency';
   the third is called 'not daring to lead the world'.

3. *Through love one may be courageous,*
   through sufficiency one may be generous.
   If one does not dare to lead the world
   one may be the head of complete men.
   If one wants to be courageous without love,
   if one wants to be generous without sufficiency,
   if one wants to advance without standing back:
   that means death.

4. *If one has love in battle*
   one is victorious.
   If one has it in defence
   one is invincible.
   Whom Heaven wants to save
   him he protects through love.

अनुवाद

1. *संसार में सब कहते हैं,*

कि मेरा ताओ महान हो सकता है,
किंतु बताने में अनुपयोगी है।
चूंकि यह महान है,
अतएव, बताने में अनुपयोगी है।
यदि यह उपयोगी होता तो बहुत पहले ही छोटा हो गया होता।

2. *मेरे पास तीन मूल्यवान वस्तुएं हैं,*
जिन्हें मैं संजोकर बड़ी सुरक्षा से रखता हूं।
प्रथम है: प्रेम,
दूसरी है: संतोष,
तीसरी है: संसार में अगुवा बनने की इच्छा न रखना।

3. *प्रेम के द्वारा आप निर्भय हो सकते हैं,*
संतोष रखकर उदार हो सकते हैं।
यदि लोगों का अगुवा बनने की इच्छा न हो,
तो आप संपूर्ण मनुष्यों के सिरमौर हो सकते हैं।
यदि कोई बिना प्रेम के निर्भय होना चाहे,
यदि कोई बिना संतोष के उदार होना चाहे,
यदि कोई बिना पीछे खड़े हुए ही आगे बढ़ने की चाह रखे,
इसका अर्थ है विनाश।

4. *यदि युद्ध में प्रेम है, तो आप विजेता हैं।*
यदि सुरक्षा में प्रेम है, तो आप अजेय हैं।
स्वर्ग जिसे बचाना चाहता है, उसे वह प्रेम द्वारा संरक्षण देता है।

भावार्थ—1. संसार के सभी लोग कहते हैं कि विश्व-नियम महान है, परंतु जब उसका वर्णन किया जाता है, तब वह ऐसा नहीं लगता कि उसका गलत उपयोग करके लाभ लिया जा सके। वह इसीलिए महान है कि बताने में उपयोगी नहीं है। यदि वह बताने में उपयोगी होता कि उसका गलत उपयोग कर लाभ लिया जा सकता है, तो वह पहले ही तुच्छ हो गया होता।

2. मेरे पास तीन कीमती चीजें हैं, प्रेम, संतोष और लोगों पर स्वामित्व करने की इच्छा का त्याग।

3. प्रेम से निर्भयता आती है, संतोष से उदारता आती है और स्वामित्व की इच्छा का त्याग रखने से सर्वोच्च स्थिति प्राप्त होती है, अतएव वह सबका सिरमुकुट हो जाता है। यदि कोई बिना प्रेम के निर्भयता चाहे, बिना संतोष के उदार होना चाहे और बिना अपने को पीछे रखे आगे बढ़ना चाहे, तो वह अपना पतन करता है।

4. युद्ध में प्रेम रखने वाला विजेता हो सकता है, किंतु सुरक्षा में प्रेम रखने वाले को कोई नहीं जीत सकता। वह अजेय होता है। स्वर्ग जिसे सुरक्षित रखना चाहता है, उसे वह अपने प्रेम का संरक्षण देता है।

भाष्य—संसार में सब कहते हैं कि मेरा ताओ महान हो सकता है, किंतु बताने में अनुपयोगी है। चूंकि यह महान है, अतएव बताने में अनुपयोगी है। और यदि उपयोगी होता, तो बहुत पहले ही छोटा हो गया होता।

प्रथम पंक्ति के कथन की शैली थोड़ी विचित्र है। उस पर न ध्यान देकर सीधा अर्थ करें कि ताओ महान है, विश्व-नियम महान है; किंतु जब उसको विवरण देकर समझाया जाता है, तब वह ऐसा उपयोगी नहीं लगता जैसा कि सामान्य लोग चाहते हैं। यदि ऐसा उपयोगी होता, तो वह कब का तुच्छ हो गया होता।

लोग भगवान एवं ईश्वर का नाम लेकर स्तुति करके और पूजा चढ़ाकर भोग और मोक्ष का लाभ लेना चाहते हैं, किंतु यह केवल भूल-भुलैया है। परिश्रम और प्रारब्ध से लौकिक धन मिलता है और साधना से मोक्ष। स्तुति और पूजा से नहीं। स्तुति-पूजा बहुत ऊपरी आवरण है।

ताओ अर्थात विश्व-नियम कोई व्यक्ति नहीं है कि वह स्तुति और पूजा पाकर प्रसन्न हो जाये और अपने भक्त को भोग और मोक्ष दे दे। अपनी कर्म-कमाई में जितना होगा उतना लौकिक लाभ होगा और साधना द्वारा अपना मन जितना शुद्ध करेंगे, उतना मोक्ष सन्निकट होगा। अतएव इसके लिए शारीरिक और मानसिक नियमों का पालन करना होगा। जो परिश्रम करेगा उसको धन मिलेगा और जो अहंकार-कामना का त्याग करेगा, उसे शांति मिलेगी। यही ताओ का अनुपालन है, नियम के अनुसार चलना है।

विश्व-नियम व्यक्ति-ईश्वर नहीं है, जो स्तुति-पूजा पाकर प्रसन्न हो जाये और अपने निकम्मे तथा लंपट भक्तों को भोग-मोक्ष दे दे। इसीलिए जब ताओ का, विश्व-नियम का वर्णन करते हैं तब वह लोगों को उपयोगी नहीं लगता। यदि ऐसा उपयोगी होता तो आजतक वह तुच्छ हो गया होता; जैसे ईश्वर को लोगों ने तुच्छ बना डाला है। वस्तुत: व्यक्ति-ईश्वर बनाया ही गया है धर्म के नाम पर धंधेबाजी करने के लिए। अतएव व्यक्ति-ईश्वर जो कोप और कृपा करता है वह शुद्ध कल्पना है; और अपने तथा दूसरों को भूल-भुलैया में डाले रहने के लिए इसकी रचना हुई है। कल्याणार्थी को चाहिए कि वह विश्व-नियम को समझे और व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए स्वयं परिश्रम और साधना करे।

मेरे पास तीन मूल्यवान वस्तुएं हैं, जिन्हें मैं संजोकर बड़ी सुरक्षा से रखता हूं। प्रथम है : प्रेम, दूसरी है : संतोष, तीसरी है : संसार में अगुआ बनने की

इच्छा न रखना। ग्रंथकार कहते हैं कि प्रेम, संतोष और स्वामित्व की इच्छा का त्याग, ये तीन रत्न हैं। सबके प्रति प्रेम रखना, उपलब्ध वस्तुओं में संतोष रखना और लोगों का स्वामी बनने की इच्छा न रखना जीवन को महान बना देते हैं।

प्रेम के द्वारा आप निर्भय हो सकते हैं, संतोष रखकर उदार हो सकते हैं। यदि लोगों का अगुआ बनने की इच्छा न हो, तो आप संपूर्ण मनुष्यों के सिरमौर हो सकते हैं। जब मनुष्य प्राणिमात्र से प्रेम करता है, तब वह निर्भय हो जाता है। प्रेम में न कलह होता है, न द्वेष, न घृणा, न मोह, न वैर। अतएव जीवन में पूरा प्रेम-प्रकाश होने पर मनुष्य निर्भय हो जाता है। जब मनुष्य मिले हुए प्राणी, पदार्थ और परिस्थितियों में संतुष्ट रहता है, तब वह उदार हो जाता है। संतोष रखकर ही दूसरे की सेवा की जा सकती है। जिस मनुष्य को किसी पर अधिकार करने की इच्छा नहीं रहती, वह स्वतंत्र हो जाता है। जो दूसरों का स्वामी नहीं बनना चाहता, वह अपना स्वामी हो जाता है। जो अपना स्वामी हो गया, वह मानो सबका सिरमौर हो गया।

यदि कोई बिना प्रेम के निर्भय होना चाहे, यदि कोई बिना संतोष के उदार होना चाहे, यदि कोई बिना पीछे खड़ा हुए ही आगे बढ़ने की चाह रखे, इसका अर्थ है विनाश। जीवन में प्राणिमात्र के लिए शुद्ध प्रेम आये बिना कोई निर्भय होना चाहे, प्राप्त में पूर्ण संतोष रखे बिना उदार होना चाहे और पूर्ण निर्मान हुए बिना आगे बढ़ना चाहे, तो वह अपना पतन कर रहा है। शुद्ध प्रेम ही से निर्भयता फलती है, पूर्ण संतोष से ही मनुष्य आग्रह-रहित उदार होता है और अपनी झूठी भौतिक हस्ती को मिटाकर ही मनुष्य परमानंद-सागर में निमग्न होता है, जो जीवन का उच्चतम शिखर है।

यदि युद्ध में प्रेम है, तो आप विजेता हैं। यदि सुरक्षा में प्रेम है, तो आप अजेय हैं। कोई राजा युद्ध में प्रेम रखता है, तो वह कभी-न-कभी दूसरे राजा पर विजय कर सकता है। यह अलग बात है कि यह विजय खोखली है। किंतु यदि कोई सबकी सुरक्षा चाहता है, तो वह दूसरे पर विजय करने की कामना से सर्वथा मुक्त होता है, इसलिए वह स्वयं अजेय हो जाता है। उस पर कोई विजय नहीं कर सकता। जो किसी पर अपना अधिकार नहीं जमाना चाहता, उस पर कौन अधिकार जमा सकता है? जो पहले से ही सबसे हार मान लेता है, उसको कौन हरा सकता है? संसार से मुक्त होने का यही रास्ता है।

स्वर्ग जिसे बचाना चाहता है, उसे वह प्रेम द्वारा संरक्षण देता है। स्वर्ग मन की निर्मलता है। इसी से शुद्ध प्रेम फलता है, जिससे मनुष्य सुरक्षित हो जाता है। यह मूल वाक्य काव्यात्मक है। स्वर्ग न आकाश में है और मनुष्य के मन की निर्मलता के अलावा न वह कोई जानदार देवता है कि वह किसी को बचाना चाहे। वस्तुत: जब अपना मन पूर्ण निर्विकार हो जाता है, तब उसमें

प्राणिमात्र के लिए शुद्ध प्रेम उदय हो जाता है और इस स्थिति में मनुष्य सुरक्षित हो जाता है, निर्भय हो जाता है।

दैहिक मोह को प्रेम कहकर प्रेम को बदनाम कर दिया गया है। वस्तुत: प्रेम प्रकाश की भांति निष्पक्ष होता है। प्रकाश जलता है। वह सबको उजाला देता है। इसी प्रकार जिसके हृदय में प्रेम उदय होता है वह सबको प्रेम देता है। शुद्ध प्रेम निर्मल मन में होता है और निर्मल मन अनासक्ति में होता है। अतएव अनासक्ति, निर्मलता तथा प्रेम यह क्रमश: विकास है। यही स्वर्ग है। इस स्थिति को प्राप्त व्यक्ति सुरक्षित है। जिसका मन निरंतर निर्मल है, वह प्रेम से भरा और निर्भय होता है। पूर्ण आध्यात्मिक निर्भयता जीवन की सर्वोच्च स्थिति है।

---

68. कलह-शून्यता स्वर्ग है

1. *Whosoever knows how to lead well*
   is not warlike.
   Whosoever knows how to fight well
   is not angry.
   Whosoever knows how to conquer enemies
   does not fight them.
   Whosoever knows how to use men well
   keeps himself below.
   This is the Life that does not quarrel;
   this is the power of using men;
   this is the pole that reaches up to Heaven.

अनुवाद

1. *जो कुशल मार्गदर्शन करना जानता है,*
   वह युद्धप्रिय नहीं होता।
   जो कुशलता से लड़ना जानता है,
   वह क्रोध नहीं करता।
   जो शत्रुओं पर विजय पाना जानता है,
   वह उनसे लड़ता नहीं।
   जो मनुष्यों का उत्तम उपयोग करना जानता है,
   वह अपने को नीचे रखता है।
   यह है वह जीवन जिसमें कलह नहीं,
   यही है मानव का उपयोग करने की शक्ति,
   यही है वह ऊंचाई, जो स्वर्ग का स्पर्श करती है।

भावार्थ—1. जो समाज को सही रास्ता दिखाने में कुशल है, वह युद्ध पसंद नहीं करता। जो लड़ने में प्रवीण है, वह क्रोध नहीं करता। जो अपने शत्रुओं पर विजय करने की कला जानता है, वह उनसे लड़ता नहीं। जो मनुष्यों से अच्छा बरताव कर उनका अच्छा उपयोग करना जानता है, वह स्वयं को

उनसे नीचे रखता है। यह वह जीवन है जिसमें झगड़ा नहीं है। यही है मानव से काम लेने की शक्ति। यही वह ऊंचाई है, जो स्वर्ग तक पहुंचती है।

भाष्य—जो कुशल मार्ग-दर्शन करना जानता है, वह युद्ध-प्रिय नहीं होता। जो स्वयं तो कलह-रहित है ही, दूसरों को भी अच्छा रास्ता दिखाने वाला है, वह युद्ध में प्रेम नहीं करता। लड़ाई अपने और दूसरे सभी के लिए दुखदायी है। वह चाहे, अस्त्र-शस्त्र लेकर हो और चाहे विवाद करके। अतएव अपने और दूसरे का हित चाहने वाला सब प्रकार की लड़ाई को दूर रखता है।

जो कुशलता से लड़ना जानता है, वह क्रोध नहीं करता। क्रोध न करना ही लड़ने में प्रवीण होना है। जो अपने अहंकार से लड़ता है, वह बाहर किसी मनुष्य पर क्यों क्रोध करेगा? शांति का रास्ता क्रोध से अलग है।

जो शत्रुओं पर विजय पाना जानता है, वह उनसे लड़ता नहीं। न लड़ना ही विरोधियों पर विजय पाना है। लड़कर हार होती है, न लड़कर विजय। यदि हम पास और दूरवालों पर विजय पाना चाहते हैं, तो उनसे विवाद न करें।

जो मनुष्यों का उत्तम उपयोग करना जानता है, वह अपने को नीचे रखता है। मनुष्यों से काम लेना, उनका उपयोग करना, उनकी व्यवस्था करना, उन्हें नियंत्रित रखना बहुत बड़ा दायित्व है। इस दायित्व को निभाने के लिए स्वयं को उन सबसे नीचे रखना चाहिए। इसका अर्थ है, अहंकार त्यागकर विनयावनत व्यवहार करना, मीठे वचन बोलना, स्वयं त्यागभाव से रहना और निर्विकार भाव से सबकी उलटी-सीधी सह लेना।

यह है वह जीवन जिसमें कलह नहीं। यही है मानव का उपयोग करने की शक्ति। यही है वह ऊंचाई जो स्वर्ग का स्पर्श करती है। जिसके जीवन में विनम्रता है, जो कलह-शून्य है, वही लोगों को कुशलता से चला सकता है। मानव का उपयोग करने की शक्ति यही है। जो सबकी ऊंची-नीची बातें निर्विकार-भाव से सह ले, और विनम्रतापूर्वक व्यवहार करे वही लोगों को ठीक से चला सकता है। ऐसा जीवन कलह से रहित रहता है। कलह से शून्य जीवन ही स्वर्ग की ऊंचाई तक पहुंच सकता है, 'this is the pole that reachs up to Heaven.' यही है वह ऊंचाई जो स्वर्ग तक पहुंचती है। स्वर्ग है मन की निर्मलता जिसमें सदैव सुख-ही-सुख है।

69. अंतर्यात्रा, बिना पैरों के चलना है

1. *Among soldiers there is a saying:*
   I dare nor play the lord and master,
   I'd rather play the guest.
   I dare not advance an inch,
   I'd rather withdraw a foot.
   This means walking without legs,
   fighting without arms.

2. *There is no greater misfortune*
   than underestimating the enemy.
   If I underestimate the enemy
   I am in danger of losing my treasure.
   Where two armies confront each other in battle
   the conqueror will be he who wins with a heavy heart.

अनुवाद

1. *सैनिकों के बीच एक कहावत है,*
   मैं स्वामी और अगुवा बनने का साहस नहीं दिखा सकता,
   बल्कि आगंतुक भले हो सकता हूं।
   मैं एक इंच आगे बढ़ने का साहस नहीं दिखा सकता,
   बल्कि एक फुट पीछे भले हट जाऊं।
   इसका भाव है, बिना कदमों के चलना,
   बिना शस्त्रों के लड़ना।

2. *शत्रु को कम करके आंकना,*
   इससे बढ़कर और कोई दुर्भाग्य नहीं।
   जब हम शत्रु को कम करके आंकते हैं,
   तो हम अपने खजाने को खोने के खतरे में पड़ जाते हैं।
   जब दो सेनाएं युद्ध में आमने-सामने हों,
   तो विजेता वही होगा जो उदास मन से जीतता है।

भावार्थ—1. सैनिकों में एक कहावत चलती है, मैं स्वयं किसी का स्वामी बनने का साहस नहीं कर सकता हूं और न यह सोच सकता हूं कि लोगों का मार्ग-दर्शन करूंगा। हां, अभ्यागत होकर लोगों में रह सकता हूं। मैं आगे एक इंच भी बढ़ने की हिम्मत नहीं कर सकता, अपितु एक फुट पीछे हट सकता हूं। इसका तात्पर्य है बिना पैरों के चलना और बिना हथियारों के लड़ना।

2. शत्रु की शक्ति को अपनी शक्ति से कम मानना इससे बड़ी बुद्धिहीनता कुछ नहीं है। जब हम अपने शत्रु का बल कम मानते हैं, तब मानो हम अपने धन-कोष को खोने की दुर्घटना में पड़ते हैं। जब दो सेनाएं युद्ध करने के लिए आमने-सामने खड़ी हों, तब विजेता वह होता है, जो भारी मन से लड़ता है।

भाष्य—उक्त अध्याय का बाहरी एवं स्थूल अर्थ यही है कि यदि युद्ध सामने आये, तो उसे टालने में भलाई है। इसी प्रकार आपसी कलह की बात आये तो उसे टाल कर समता से रहने में हित है। संत लाओत्ज़े के बहुत से कथन पहेलियों तथा उलटवांसियों में होते हैं। जेम्स लेगी इस अध्याय की टिप्पणी में लिखते हैं, "We do not know the master of the military art referred to was. Perhaps the auther only adopted the style of quotation to express his own sentiment." अर्थात मैं नहीं जानता कि कौन ऐसा सेनापति होगा जो उक्त बातें स्वीकारेगा। संभवत: लेखक अपनी विषय-वस्तु समझाने के लिए सेना का उदाहरण देता है।

यह तो ठीक है कि युद्ध से दोनों पक्षों का पतन होता है। इसलिए समझदार युद्ध से बचता है। इसी प्रकार आपसी कलह से दोनों पक्षों का अहित होता है। इसलिए विवेकवान कलह से दूर रहता है। अब हम ग्रंथकार के मूल सूत्रों पर विचार करें।

सैनिकों के बीच एक कहावत है, मैं स्वामी और अगुआ बनने का साहस नहीं दिखा सकता, बल्कि आगंतुक भले हो सकता हूं। स्वामी और अगुआ बनने की इच्छा करना अपना पतन करना है। परिवार, समाज या किसी समूह में रहकर सेवा करना ठीक है, उसका स्वामी बनने की इच्छा करना अपने को गिराना है। यदि लोगों द्वारा आपको ऐसा दायित्व दिया जाये, और आप उसको निभाने के योग्य हैं, तो परिवार एवं समाज की सेवा कीजिये अपने को सेवक मानकर, स्वामी मानकर नहीं।

लौकिक व्यवहार में पद दिया जाता है, जैसे अध्यक्ष, मंत्री आदि का। व्यवहारत: उनको स्वीकारते हुए भी अपना मन सेवक ही बना रहना चाहिए। नाम काल्पनिक है। पद भी केवल नाम है, अत: वह काल्पनिक है और सारा व्यवहार क्षणिक है। अंत में कुछ साथ नहीं रहता। इनमें अपने को उलझाकर शांति का पथ छूट जाता है। इसलिए आपके काल्पनिक नाम के साथ काल्पनिक

पद भले जुड़ा रहे, परंतु आप अपने को उससे असंग रखें और सेवक बनकर विनम्रता से सेवा करें।

मैं एक इंच आगे बढ़ने का साहस नहीं दिखा सकता, बल्कि एक फुट पीछे भले हट जाऊं। पाठक ध्यान दें, क्या युद्ध का सेनापति तथा सैनिक ऐसा सोचेगा? वह तो साहस करके आगे बढ़ने की बात सोचेगा और विरोधी को मारकर विजय की लालसा रखेगा। वस्तुतः ग्रंथकार का आध्यात्मिक उपदेश है। वे कहते हैं शांति-इच्छुक अधिकार की लालसा रखकर आगे एक इंच भी बढ़ने की चेष्टा न करे, अपितु एक फुट पीछे हट जाय। भोग और अधिकार की लालसा त्यागकर शांति मिलती है।

इसका भाव है, बिना कदमों के चलना, बिना शस्त्रों के लड़ना। पैरों से चलकर बाहरी गतंव्य मिलता है, परंतु भीतरी गंतव्य तब मिलता है जब रुका जाये। रुकने का अर्थ है अहंकार-शून्य, इच्छा-शून्य हो जाना। अहंकार और इच्छा ही में कर्म बनते हैं, जिनसे जीव भटकता है, परंतु अहंकार और इच्छा समाप्त हो जाने पर मन प्रशांत हो जाता है और मन के प्रशांत होने पर भवचक्र मिट जाता है। यह भीतरी यात्रा है। इसमें चलने के लिए पैरों की आवश्यकता नहीं होती, अपितु रुकने की आवश्यकता है। रुकना ही भीतरी यात्रा है। अहंकार-शून्य होने पर इच्छाएं स्वतः शांत हो जाती हैं और तब आत्मा अपने स्वरूपस्थिति-राज्य का सम्राट होता है। यह विजय बिना शस्त्रों के होती है। बाहर के हथियार और मन के राग, द्वेष तथा कलह के हथियार पूरा त्याग देने पर आत्मविजय होती है। बिना शस्त्रों के लड़ने का अर्थ है क्रिया-शून्य हो जाना, सब तरफ से हार मान लेना। यह सब अहंकार-शून्यता की ही स्थिति है। इसमें यह भ्रम नहीं करना चाहिए कि ऐसा व्यक्ति कर्तव्य-कर्म का त्याग कर देता है। वह कर्तव्यशील होता है।

शत्रु को कम करके आंकना, इससे बढ़कर कोई दुर्भाग्य नहीं। जब हम शत्रु को कम करके आंकते हैं, तो हम अपने खजाने को खोने के खतरे में पड़ जाते हैं। बाहरी अर्थ के अनुसार यदि कोई राजा अपने शत्रु के बल को कम करके आंकता है तो वह धोखा खायेगा और अपने खजाने को लुटायेगा। शत्रु, विष, कर्ज आदि को छोटा करके न माने; अतएव उससे हरक्षण सावधान रहे। भीतरी अर्थ में अहंकार शत्रु है। इसको कम न समझे। साधक काफी साधना करके अपने बहुत से दुर्गुणों को नष्ट कर देते हैं और उसके बाद वे असावधान हो जाते हैं। वे समझते हैं कि हम मन पर पूर्ण विजयी हो गये हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके मन में पुनः अहंकार उदय होता है और वे नीचे जाने लगते हैं। अतएव जब तक शरीर है, सतत सावधान रहना चाहिए। मनोविकार-शत्रु पुनः सिर न उठाने पायें।

जब दो सेनाएं युद्ध में आमने-सामने हों, तो विजेता वही होगा जो उदास मन से जीतता है। जो युद्ध का दुखद परिणाम समझता है, वह उसे नहीं चाहता, परंतु शत्रुपक्ष ने बलात युद्ध लाद ही दिया है, तो समझदार सेनापति भारी मन से लड़ता है, वही जीतता है। इसका अर्थ है युद्ध टालना। संत लाओत्ज़े कभी युद्ध नहीं चाहते।

भीतरी अर्थ है, मनोविकारों पर वही विजय पाता है, जिसका मन सांसारिकता से पूर्ण उदास हो। भूला मन संसार का सुख पकड़ने दौड़ता है, और वह दुख सिद्ध होता है। सोने के मृग ने केवल श्री सीता जी और श्रीराम को ही दुख नहीं दिया, संसार के सारे मनुष्यों को सब काल में दुख दे रहा है। भ्रम-वश हमें सर्वत्र सोने का मृग दिखता है और सोने का मृग कहीं नहीं होता। हमें सर्वत्र संसार की झूठी चमक-दमक में सुख दिखता है, परंतु इसमें दुख के अलावा कुछ नहीं है। वस्तुतः सारे लौकिक सुखों से उदास हो जाना सच्चा सुख है। सुख का भ्रम मिट जाना सच्चा सुख है।

70. सत्य को ग्रहण करने वाले विरल हैं

1. *My words are very easy to understand*
   and easy to carry out.
   But no-one on earth can understand them
   nor carry them out.

2. *Words have an ancestor.*
   Deeds have a lord.
   Because they are not understood
   I am not understood.

3. *It is precisely in being so rarely understood*
   that my value rests.
   Therefore the Man of Calling
   walks in haircloth
   but in his bosom he guards a jewel.

अनुवाद

1. *मेरे शब्दों को समझना बहुत सरल है,*
   और उनका अनुपालन भी सरल है।
   किंतु संसार में न कोई उन्हें समझ सकता है,
   और न कोई उनका अनुपालन कर सकता है।

2. *शब्दों का एक पूर्वज है।*
   कृत्यों का एक स्वामी है।
   चूंकि उन्हें समझा नहीं गया,
   मैं अनसमझा ही रह गया।

3. *वस्तुत: इतना कम समझे जाने में ही*
   मेरा मूल्य निहित है।
   अतएव,
   संत बाल के कपड़े पहन कर विचरते हैं,
   परंतु उनके अंतस्थल में रत्न सुरक्षित हैं।

भावार्थ—1. मेरे उपदेशों को समझना सरल है, उनके अनुसार आचरण करना भी सरल है, परंतु दुनिया में न कोई उन्हें समझ सकता है और न उसके अनुसार आचरण कर सकता है।

2. मेरे शब्दों का एक मूल सिद्धांत है और कर्मों का स्वामी है। क्योंकि उन्हें समझा नहीं गया, इसलिए मुझे नहीं समझा गया।

3. सच्चाई यह है, मैं बहुत कम लोगों द्वारा समझा गया। इसी में मेरा महत्त्व है। संत बाल के सस्ते कपड़े पहनकर भ्रमण करते हैं, परंतु उनके अंतस्तल में रत्न छिपे हैं।

भाष्य—मेरे शब्दों को समझना सरल है, और उनका अनुपालन भी सरल है। किंतु संसार में न कोई उन्हें समझ सकता है, और न कोई उनका अनुपालन कर सकता है। संत लाओत्ज़े कहते हैं कि मेरे उपदेश सरल हैं। उन्हें बड़ी सरलता से समझा जा सकता है; और उनका जीवन में आचरण करना भी बड़ा सरल है; परंतु उनको समझने और उनका आचरण करने वाले विरले हैं। मूल पाठ के अनुसार तो **कोई न उन्हें समझ सकता है और न उनका आचरण कर सकता है।** परंतु आगे तीसरे अनुच्छेद के अनुसार **इतना कम समझे जाने में ही मेरा मूल्य निहित है।** अर्थ होता है कि मेरी बातों को कम लोग समझे।

रिचर्ड विल्हम इस पंक्ति की टिप्पणी में लिखते हैं, ''कन्फ्यूशियस की तरह लाओत्ज़े को न समझे जाने की समस्या से जूझना पड़ा। प्रत्येक संत जिस ढंग से इस तथ्य से निपटता है, संभवत: वही उसकी सबसे बड़ी विशिष्टता है। लोगों द्वारा उन्हें न समझा जाना यह कनफ्यूशियस के लिए सर्वाधिक पीड़ाजनक था, और वे संभवत: इससे कभी उबर न सके। उनके ग्रंथ 'एनालेक्ट्स' की प्रथम पंक्ति से लेकर आगे भी जिस ढंग से वे न समझे जाने अथवा गलत समझे जाने से ऊपर उठकर काम करने की बात करते हैं, वह इस बात का संकेत है कि इस समस्या ने उन्हें कितना गहरे तक प्रभावित किया था। हम जानते हैं कि यह उनका पीड़ित-दर्प नहीं था, जिसके कारण वे ऐसा कहते हैं, किंतु यह उनका दृढ़ विश्वास था कि उनके पास समाज की सहायता करने के लिए साधन हैं। फिर भी उनका प्रयोग करने के लिए कोई तैयार नहीं है। जबकि लाओत्ज़े इससे भिन्न ढंग से निपटते हैं। अपने स्वाभिमान और संप्रभुता में रहकर वे इसे तुच्छ मानते हैं। वे इस ज्ञान में सुदृढ़ हैं कि न समझे जाने अथवा गलत समझे जाने का कारण उनकी शिक्षाओं को न समझना है—ताओ, जो उनकी शिक्षाओं का और अंतर्निहित नियमों का स्वामी और पूर्वज है, उसे ही नहीं समझा गया है। लाओत्ज़े उन उच्च श्रेणी के संतों में आते हैं, जिनकी चर्चा कनफ्यूशियस के 'एनालेक्ट्स' में प्राय: है, और जो इससे प्राय: उदासीन रहे हैं। आत्मलीन संतों

के लिए यह दृष्टिकोण सहज-साधारण है। लाओत्ज़े ऐसे ही उच्च संत हुए हैं जो प्रत्येक देश और काल के लिए अनुकरणीय हैं।''[1]

शब्दों का एक पूर्वज है, कृत्यों का एक स्वामी है। चूंकि उन्हें समझा नहीं गया, मैं अनसमझा ही रह गया। ग्रंथकार कहते हैं कि जिन शब्दों को मैं बोल रहा हूं उनका एक पूर्वज है, वह है विश्व-नियम का सिद्धांत, जिसे मैं ताओ कहता हूं। तात्पर्य यह है कि किसी शब्द का जब कोई उच्चारण करता है तब उसके मूल में अर्थ होता है। पहले मन में अर्थ आता है, वही सिद्धांत है, और उसको लोगों में प्रकट करने के लिए शब्द बोले जाते हैं।

ग्रंथकार जगत को समझने के लिए मनुष्यों को उसके नियम की तरफ संकेत करते हैं, किसी देवी-देवता या ईश्वर की तरफ नहीं। वे यह नहीं कहते हैं कि दुनिया को कोई व्यक्ति-ईश्वर चला रहा है। वे कहते हैं कि दुनिया अपने स्वभावगत निहित गुण-धर्मों से चल रही है। यह वैज्ञानिक तथ्य है।

दूसरी बात है, **कृत्यों का एक स्वामी है।** इसे समझना आवश्यक है। कृत्य का अर्थ है किया हुआ। यहां का तात्पर्य है कि हमारे मन, वाणी और इंद्रियों से निरंतर कर्म होते हैं। उनका एक कर्ता स्वामी है। वह चेतन आत्मा, जो मैं के रूप में शरीर में विद्यमान है। मैं जो मन से सोचता हूं, वाणी से बोलता हूं और इंद्रियों से करता हूं, उन्हीं के फल मुझे मिलते हैं। यदि मन में बुरी भावना

---

1. **Like Confucius, Lao Tze had to deal with the problem of not being understood. There is probably nothing more characteristic than the way in which each of the two deals with this fact. For Confucius the greatest source of pain was not to be understood, and he probably never quite managed to cope with it. The fact that he talks so much—from the opening sentence in the Analects—about the need to rise above being misunderstood or misjudged, is an indication of how deeply the problem affected him. We know that it was not wounded pride that caused this response, but the conviction that while he had the means to help the realm there was no one prepared to apply these means. Lao Tze, however, dismisses the problem in pride and sovereignty, secure in the knowledge that being misjudged or misunderstood results from the fact that DAO, the 'lord and ancestor' of his teachings and its underlying principle, is not perceived or recognised. He belongs to the catena of sages who have resigned themselves to this once and for all, whose like we meet many times in the Analects of Confucius, especially in book XVIII. For the mystic this attitude is quite natural. In this respect Lao Tze has 'kindred spirits' at all times, and in all nations.**

(Page 139, Tao Te Ching)

रखकर बोलना और करना होगा तो मुझे दुख मिलेगा, और अच्छी भावना रखकर बोला और किया जायेगा, तो शांति मिलेगी।

ग्रंथकार कहते हैं, यह सब मेरा सिद्धांत है, उपदेश है। यह सब समझना सरल है और इसके अनुसार आचरण करना सरल है, परंतु लोग इतनी गहरी सोच में उतरना नहीं चाहते हैं। लोग लौकिक लाभ के ही चक्कर में घूमते हैं। संसार में अधिकतम ऐसे गुरु और उपदेष्टा हैं, जो कहते हैं कि संसार को चलाने वाला एक जादूगर ईश्वर है। हम उसके प्रतिनिधि हैं। अत: हमारी शरण में आओ तो हम तुम्हें सहज ही भोग-मोक्ष दे देंगे। ऐसे गुरुओं के चक्कर में पड़कर लोग स्वयं सत्य पर चिंतन करने और अपने मन, वाणी तथा कर्मों को सुधारने की साधना नहीं करना चाहते।

ग्रंथकार कहते हैं कि विश्व-नियम के सिद्धांत को और कर्मों के कर्ता स्वामी चेतन आत्मा को नहीं समझा गया, अतएव लोग मुझे नहीं समझे। बहुत थोड़े लोग इस तथ्य को समझे। इसलिए मैं लोगों द्वारा अनसमझा ही रह गया।

वस्तुतः इतना कम समझे जाने में ही मेरा मूल्य निहित है। अतएव संत बाल के कपड़े पहनकर विचरते हैं, परंतु उनके अंतस्तल में रत्न सुरक्षित हैं। संत लाओत्ज़े के सिद्धांत को तथा उन्हें लोग कम समझ पाये, परंतु इसको लेकर वे पीड़ित नहीं हैं। वे कहते हैं **इतना कम समझे जाने में ही मेरा मूल्य निहित है।** हीरा खरीदने वाले थोड़े लोग होते हैं, किंतु इससे हीरे का मूल्य कम नहीं होता। सद्‌गुरु कबीर कहते हैं—

हीरा सोइ सराहिये, सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा, परखत निकरा खोट॥
हरि हीरा जन जौहरी, सबन पसारी हाट।
जब आवै जन जौहरी, तब हीरों की साट॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ कुँजरों की हाट।
सहजै गाँठी बाँधि के, लगिये अपनी बाट॥
हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
केतेहिं मूरख पचि मुये, कोइ पारखि लिया उठाय॥
हीरों की ओबरी नहीं, मलयागिरि नहिं पाँत।
सिंहों के लेहँड़ा नहीं, साधु न चले जमात॥

(बीजक, साखी 168-172)

ग्रंथकार कहते हैं, **संत बाल के कपड़े पहनकर विचरते हैं, परंतु उनके अंतस्तल में रत्न सुरक्षित हैं।** चीन में अधिक ठंडी पड़ती है। वहां संत बाल से

बने वस्त्र पहनकर भ्रमण करते थे जो टिकाऊ तथा सस्ते होते थे। ग्रंथकार कहते हैं कि संत भले भद्दे कपड़े पहनकर विचरते हैं परंतु उनके हृदय में सत्यज्ञान और शुचिता के रत्न भरे पड़े हैं।

लाओत्ज़े उच्चतम संत हैं। वे लोगों द्वारा अपने को कम समझे जाने के कारण दुखी नहीं हैं, किंतु आनंदमग्न हैं। सद्गुरु कबीर साहेब भी यही बात कहते हैं—"मैंने सब के लिए हित की बातें कहीं, किंतु मुझे कोई न समझ सका। किंतु मैं पहले प्रसन्न था, आज प्रसन्न हूं और आगे भी प्रसन्न रहूंगा। यहां तक कि अनंतकाल तक मैं आनंदसागर से अलग नहीं हो सकता।" यथा—

हम तो सबकी कही, मोको कोई न जान।
तब भी अच्छा अब भी अच्छा, जुग-जुग होउँ न आन॥

(बीजक, साखी 183)

"मोको कोई न जान" का अर्थ यही है कि मेरी बातों को कम लोग जान सके। यदि कोई न जानता तो कबीर साहेब की बातें आज तक कैसे व्याख्यायित होतीं और कैसे आचरित होतीं? उनके सत्य व्याख्याता और आचरणकर्ता रहे हैं और आज भी हैं, किंतु कम हैं।

दुनिया के समस्त विचारकों ने यह अनुभव किया है कि जितना हम समाज को सुधारने के लिए उत्सुक हैं, समाज उसका शतांश भी नहीं उत्सुक है। यदि लोग सत्य-बोध पाने तथा सत्य-रहनी में चलने के लिए उत्सुक हों तो उसके प्रेरक को भी समझने के लिए उत्सुक हों। इसीलिए संत लाओत्ज़े ने कहा कि मेरे सिद्धांत को नहीं समझा गया, इसलिए मुझे नहीं समझा गया।